भूमिका

बँगला का आधुनिक काव्य-साहित्य एक विराट क्षेत्र में फैला हुआ है, उसको एक पुस्तक में वर्णन करना असंभव-सा है। बँगला में भी ऐसी कोई पुस्तक नहीं है जिसका दायरा इतना बड़ा हो। अकेले रवीन्द्रनाथ पर ही इस पुस्तक से कहीं अधिक लिखने की जरूरत है। फिर भी हिन्दी के विद्वानों के समक्ष मैं इस पुस्तक को रखने का साहस करता हूँ। आशा है बँगला कविता के समझने में यह सहायक होगी।

यह पुस्तक कवि चरित्र नहीं है, बल्कि काव्य की समीक्षा, उसकी धाराओं की उत्पत्ति, घातप्रतिघात तथा विकास को ही दिखलाना मेरा उद्देश्य है। कवियों और उनकी कविता के चुनाव में हमें बड़ी दिक्कत का समाना करना पड़ा है। एक धारा की कई कविताओं को नमूना रूप में पाठक के सामने रखने के बजाय हमने वैचित्र्य का ख्याल रखना अधिक उचित समझा। इस आयोजन से संभव है किसी कवि की सर्वोत्तम कविता की जगह उसकी सबसे मौलिक किन्तु सर्वोत्तम नहीं, ऐसी कविता को मैंने स्थान दिया हो, फिर भी मैं समझता हूँ इस प्रकार सारे बँगला काव्य-साहित्य के विषय में पाठक की धारणा अधिक सही होगी। यही इस पुस्तक का उद्देश्य हो। इसमें युद्धकालीन कविता पर विचार नहीं किया गया, उसके लिये एक पृथक पुस्तक की आवश्यकता है।

जवाहर स्कायर, मन्मथनाथ गुप्त
इलाहाबाद

सूची पत्र

१

प्रारम्भिक युग

विज्ञान और कविता की चिरवैरिता—आधुनिकता का प्रारम्भ—पाश्चात्य प्रभाव—ईश्वर गुप्त—साम्य मैत्री स्वाधीनता—प्राच्य और पाश्चात्य—बँगला साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव और रवीन्द्रनाथ का मत—वंकिमचन्द्र—पाश्चात्य प्रभाव किन्तु......—साहित्य और जाति की प्रतिभा—बँगला के प्राचीन कवि—साहित्यिक शुद्धता—अंग्रेजी साहित्य के तीन महायुग के साथ तुलना—पाश्चात्य प्रभाव की महत्ता—बँगला साहित्य की उन्नति के कारण—नया साहित्य—पाश्चात्य प्रभाव से पथभ्रष्ट—आधुनिक बँगला का उद्भवकाल—सिलसिला न रहा—माइकेल और विहारी-लाल—वंकिम एक साहित्यिक क्रान्तिकारी—वंकिम साहित्य—वंकिम साहित्य में राष्ट्रीयता—माइकेल की कविता—माइकेल पर कवीन्द्र का मत—माइकेल का मूल्य—मेघनादवध काव्य—वीरांगना काव्य—कृष्ण के नाम रुक्मिणी—नीलध्वज के प्रति जना—नवीन साहित्य में व्यक्तिस्वातंत्र्य—कविता और छन्द का सम्बन्ध—छन्द साहित्य की एक कृत्रिम पद्धति ?—बँगला के सरल छन्द—माइकेल और पयार छन्द—कवि विहारीलाल चक्रवर्ती—विहारीलाल की कविता—विहारीलाल की भाषा—आत्मनिमग्न विहारीलाल—विहारीलालकी हिमालय कविता—कवि सुरेन्द्रनाथ मजुमदार—कविता में नारी की पूजा—"गंभीर निशीथ में" एक कविता—देवेन्द्रनाथ सेन—अक्षय-कुमार बड़ाल—एक दूसरी कविता—आखिर मिलन—अक्षयकुमार बड़ाल का आह्वान— पृ १—४३

२

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ और उनका दान

उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा—वे केवल माइकेल की तरह मधुकर नहीं—बंकिम और रवीन्द्रनाथ—रहस्यवादी कविता उनका मुख्य दान नहीं—उनके रहस्यवाद का विश्लेषण—भाषा पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव—रवीन्द्रनाथ बँगला में अकेले—रवीन्द्रनाथ मध्यम श्रेणी के कवि—रवीन्द्र के ताजमहल की समालोचना—बँगला भाषा पर उनका अमिट प्रभाव—एक नक्षत्र की आत्महत्या—प्रेतात्मा—रूढ़िवाद पर आघात—काव्यमय कहानी—मुक्ति—पीड़िता नारी के साथ सहानुभूति—रवीन्द्रनाथ की उर्वशी—स्विनबर्न की *Aphrodite* —रवीन्द्रनाथ में सौन्दर्य का एक दूसरा आदर्श—दोनों आदर्श एक हैं—दूसरा आदर्श केवल काल्पनिक—सौन्दर्य विज्ञान की कसौटी पर उर्वशी—रवीन्द्रनाथ पर एक सरसरी निगाह—एक जीवन में कई जन्म और एक जन्म कई में जीवन—आधुनिकों के आधुनिक किन्तु—एबार फिराओ मोरे—*idealist* के नाते रवीन्द्रनाथ की सीमा— पृ ४४—८२

३

प्राक-अति आधुनिका या रवीन्द्र युग

द्विजेन्द्रलाल राय—नन्दलाल—सत्येन्द्रनाथ दत्त—चम्पा—इन्दिरा देवी और प्रियम्वदा देवी—आशतीत—यतीन्द्रमोहन बागची—कालिदास राय—छात्रधारा—निरूपमा देवी—यतीन्द्रनाथ सेनगुप्त—काजी नज़रुल इस्लाम—राधचारण चक्रवर्ती—सुधाकान्त राय चौधरी—सुरेन्द्रनाथ मैत्र— पृ ८३—११०

४

अति-आधुनिक युग

अति-आधुनिक कविता—आधुनिकता की त्रिधारा—कल का आधुनिक आज का प्राचीन—अति-आधुनिक साहित्य पर आक्षेप—विधाता की सृष्टि बनाम कलाकार की—नवीन प्राचीन का ऋणी—कहाँ तक—साहित्य में चिरन्तन सत्य—मध्यवित्त श्रेणी का नहीं जनता का साहित्य—वास्तविक परिस्थिति—राष्ट्रयता तथा श्रेणी संघर्ष—अति आधुनिक साहित्य के क्षेत्र—आधुनिक कविता का क्षेत्र—मोहितलाल मजुमदार—वनफुल उर्फ बलाईचाँद—सजनीकान्त दास—रवीन्द्रनाथ मैत्र—प्रेमेन्द्र मित्र—सावित्री प्रसन्न चट्टोपाध्याय—अचिन्त्यकुमार सेनगुप्त—अन्नदाशंकर राय—अजित-कुमार दत्त—बुद्धदेव बोस—हुमायुन कबीर—आशु चट्टोपाध्याय—महीउद्दीन—फुटकर कवियों की कविता—उपसंहार। पृ १११—१५४

१

आधुनिक बंगला काव्य का प्रारम्भिक युग

ईश्वर गुप्त, माइकेल मधुसूदन दत्त, विहारीलाल, हेमचन्द्र, नवीन-चन्द्र, देवेन्दनाथ, शिवनाथ शास्त्री, अक्षयकुमार वडाल इत्यादि

विज्ञान और कविता की चिरवैरीता

उन्नीसवी सदी के अन्त की ओर जिलासों तथा अन्य कुछ धुरन्धर समालोचकों ने यूरोप में यह नारा दिया कि अब विज्ञान का युग जोरों से शुरू हो चुका है और विज्ञान है मुख्यतः बुद्धि प्रधान, इसलिये अब कविता जो कलाकार की भावुकताप्रधान सृष्टि है पनप नहीं सकती। कहा गया कि बुद्धि की कड़ी धूप में कविता-लता मुरझा जायगी। आम तौर से यह प्रतिपादित किया जाने लगा कि वर्त्तमान युग की आत्मा कविता के स्वल्पपरिसर तथा सीमित माध्यम के ज़रिये से अपने को प्रकाश नहीं कर सकती। यह सब कहे जाने पर भी कविता बराबर लिखी गई, और पढ़ी गई, केवल यही नहीं आधुनिक कवितायें पहिले के युग की कविता से निकृष्ट नहीं थीं। ईटस, नोगुचि, इक़बाल, तथा रवीन्द्रनाथ का नाम लेना ही इस बात का प्रमाण है कि लाखों प्रमुख लोगों की आशंका ग़लत थी। जिस विज्ञान मार्तंड को कविता लता का चिरवैरी करके चित्रित किया गया था, देखा गया कि कविता ने अपनी प्राण शीलता के कारण उसी सूर्य से अपने लिये जीवन के उपकरण खींच लिये, केवल यही नहीं उसने विज्ञान की भाषा तथा पारिभाषिक शब्दसंभार से अपने लिये नई उत्पेक्षायें, रूपक, उपमा आदि संग्रह कर लिया। कविता में पहिले पद्म, पराग, कमल, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र पंकज आदि शब्द आते थे याद रहे ये सभी वैज्ञानिक शब्द थे, किन्तु अब कविता में ये शब्द तो

आते ही रहे, साथ ही अब डिनामाइट, माइन आदि बिलकुल अकवित्वपूर्ण वैज्ञानिक शब्द आने लगे। आधुनिक कवियों ने इस प्रकार इन निराशावादी समालोचकों की आशङ्काओं को झूठी प्रतिपन्न कर दिया। विज्ञान कविता का शोषक न होकर पोषक प्रमाणित हुआ।

बँगला साहित्य में हम विज्ञान से कविता विनाश की आशङ्का को और भी झूठी पड़ जाते देखते हैं। हिन्दी तथा अन्य सभी भाषा के प्राचीन साहित्य की तरह बँगला के प्राचीन साहित्य में केवल कविता ही कविता है। आधुनिक बँगला साहित्य में कविता का यह सर्वेसर्वापन या अधिनायकत्व तो क़ायम नहीं रहा, किसी भी साहित्य में क़ायम नहीं है, किन्तु फिर भी बँगला में कविता की सृष्टि गुण तथा परिमाण दोनों दृष्टि से बराबर सफलतापूर्वक जारी है। सच बात तो यह है आज विश्वसाहित्य में बँगला साहित्य की धूम बँगला के एक कवि की ही बदौलत है, नहीं तो बँगला जनसंख्या की दृष्टि से दुनिया की सप्तम भाषा होने पर भी शायद विश्वसाहित्य का रसिक इस भाषा के नाम से भी परिचित न होता। आगे चलकर हमें इस बँगाली कवि रवीन्द्रनाथ को अच्छी तरह विश्लेषण करने का मौक़ा आयेगा।

आधुनिकता का प्रारम्भ

आधुनिक बँगला कविता के सम्बन्ध में पहिली समस्या जो आती है वह यह है कि बँगला काव्यधारा की इस कलकलनिनादिनी सरिता में आधुनिकता का पानी कहाँ आरंभ हुआ, और प्राचीनता का कहाँ अन्त हुआ। यह एक टेढ़ा प्रश्न है। हम सभी जानते हैं कि रवीन्द्रनाथ या माइकेल मधुसूदन दत्त आधुनिक कवि हैं, किन्तु समस्या तो इनके सम्बन्ध में नहीं है, समस्या है इनके पहिले के कवियों को लेकर। कहाँ से हम समझे कि अब आधुनिकता का प्रादुर्भाव हुआ, फिर कुछ कवि ऐसे भी तो होंगे जो युगसान्धि के समय के हैं। इनमें से कुछ प्राचीनता का त्याग कर देने पर भी

आधुनिकता को अपना नहीं पाये, उसके लिये ज़मीन तैयार नहीं थी; कुछ आधुनिकता के मोह में इतने उच्छृङ्खल हो गये कि अनुप्रेरणा की धारा को सिलसिलेवार तरीके से क़ायम न रख सके, इसलिये उनकी सृष्टि विश्वामित्र की दृष्टि की तरह एक अजीबोग़रीब सृष्टि हो गई जो न आधुनिक ही हुई न कविता।

पाश्चात्य प्रभाव

इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय साहित्य में हम आधुनिक युग तभी से गिन सकते हैं जब से उस पर पाश्चात्य प्रभाव पड़ा। यह बात हिन्दी, बँगला, मराठी सभी साहित्य के सम्बन्ध में सत्य है। पाश्चात्य की तीव्र रोशनी जब अकस्मात् हमारी जाति की मन्थर चेतना पर पड़ी तो उसके सारे अस्तित्व में एक बिजली-सी दौड़ गई, प्रतिक्रिया की क्रिया फ़ौरन शुरू हुई। इस आकस्मिक रोशनी के प्रहार से कहीं-कहीं तो गुमराही आ गई। इस युग के बँगला कविगणों में श्रेष्ठ ईश्वर गुप्त और रंगलाल गुमराह नहीं हुए, किन्तु क्यों? "वह इसलिये कि इन दोनों में से एक भी अच्छी तरह जग नहीं पाये थे, एक तो जमुहाई लेते हुए चुटकी बजाते ही रह गये दूसरे ने इस रोशनी की एक झलक देखकर ही किवाड़े बन्द कर लिये, और अपने कमरे के स्तिमित मिट्टी के दिये को बचाने की चेष्टा करने में रह गये।"

ईश्वर गुप्त

ईश्वरचन्द्र गुप्त की एक कविता लीजिये

आर कबे भाइ मानुष हबे।
देखे तोर आकार-प्रकार, आचार-विचार
मानुष कबे, मानुष हबे?
होते चाओ मानुष यदि भ्रान्ति नदी
एइ बेला पार हओ रे तबे?

नयने छोटो बड़ो देखबे जारे
तुषबे तारे प्रिय रवे
जाते हाड़ि मुचि सबाइ सुचि
समभावे भावबे सवे

भावार्थ—"अब तू कब आदमी होगा, तुझे जो सूरत से मैं देखता हूँ तो हर तरीके से आदमी ही मालूम होता है, लेकिन तू यथार्थ में आदमी कब होगा ? अगर तुझे सचमुच आदमी ही होना है तो भ्रान्ति-रूपी नदी को पार कर के आदमी क्यों नहीं बन जाता ? जिनको तू छोटा बड़ा करके देखता है उनको भी मीठी वाणी से तुष्ट रख, जाति से चाहे कोई डोम या चमार ही हो, उसे बराबर करके ही सोच।"

साम्य, मैत्री, स्वाधीनता

ईश्वर गुप्त की इस कविता में हम साम्य, मैत्री स्वाधीनता (*Liberty*, *equality*, *fraternity*) का सन्देश चाहें तो पढ़ सकते हैं, किन्तु भाषा कितनी अक्षम है तथा ज़बान कितनी दबी हुई है। यह जो कहा गया है ईश्वर गुप्त ठीक-ठीक जगे नहीं यह ठीक ही मालूम पड़ता है। रंगलाल् की कविता का भी यही हाल है।

प्राच्य और पाश्चात्य

प्राच्य और पाश्चात्य के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें तथा पुस्तकें तुलनात्मक रूप से लिखी गई हैं, किन्तु मेरा ख्याल है जो पहिले-पहल पाश्चात्य का प्रभाव प्राच्य पर पड़ा, और प्राच्य उससे तिलमिलाकर बिलबिला उठा, उसकी वजह यह नहीं थी कि पाश्चात्य ने जो कुछ दिया वह बिलकुल कोई मौलिक रूप से नई चीज़ थी, बल्कि सच बात तो यह है कि दोनों के घनत्व या गति में (*Intensity and speed*) आकाश-पाताल का प्रभेद था। यदि इस दृष्टि से प्राच्य सभ्यता का प्रतीक हम तख्ते-ताऊस को मानें तो पाश्चात्य का प्रतीक हमें लिफ्ट को मानना पड़ेगा। साम्य, मैत्री, स्वाधीनता वाले

आदर्श को ही लिया जाय; क्या यह भारतवर्ष में नहीं है या नहीं था? वसुधैव कुटुम्बकम आदर्श कहीं और का थोड़े ही है, किन्तु जहाँ एक तरफ़ यह आदर्श था वहीं दूसरे तरफ़ कार्यक्षेत्र में जाति भेद की भीषण चीनी दीवार थी जो मनुष्य के साथ मनुष्य को बिलकुल बिलग कर देती थी। परिया शब्द विश्व के शब्दकोष में भारतवर्ष का ही दान है। बड़े-बड़े आदर्श यहाँ थे, किन्तु वे परमहंसों के लिये थे, साधारण मनुष्य तो वही सैकड़ों प्रकार के भेद में पड़ा रहता था, वह वसुधैव कुटुम्बकम वालों परमहंसों को सिर उठाकर देखता भर था। जैसे पहाड़ पर चढ़े हुए मनुष्य को समतल का मनुष्य देखता है। उसके दिनानुदैनिक जीवन के साथ उसका ना तो कोई संस्पर्श था न सम्पर्क। ईश्वर गुप्त या उनके समकालीन कवियों में हम पाश्चात्य की इसी द्रुतता तथा जीवन में सिद्धान्त को अनुवाद करने की बल्कि जीवन में नये प्रयोग करने की व्यग्रता का कुछ पुट पाते हैं। इसी कारण हम उन्हे मोटे तौर पर प्रथम आधुनिक बँगला कवि मान सकते हैं। मोटे तौर पर इसलिए कहा गया कि जिस तरह यह कहना कठिन ही नहीं असंभव है कि रात्रि किस मुहूर्त में खतम होकर प्रभात शुरू हुआ उसी तरह यह कहना कठिन है कि पाश्चात्य प्रभाव कब से बँगला साहित्य में किसको वाहन बनाकर दृष्टिगोचर होने लगा।

पाश्चात्य प्रभाव पर रवीन्द्रनाथ

यह शायद समझा जाय कि मैं पाश्चात्य प्रभाव को बहुत बड़ा स्थान दे रहा हूँ, इसलिये बँगला कविता पर पाश्चात्य प्रभाव का कितना बड़ा भाग है यह रवीन्द्रनाथ के शब्दों में पाठकों के सन्मुख रक्खा जाता है। कवीन्द्र लिखते है "आधुनिक बँगला कविता की उत्पत्ति यूरोपीय साहित्य की अनुप्रेरणा से हुई इसमें सन्देह नहीं। इस पर यह आपत्ति की जाती है कि फिर यह सब चीज़े राष्टीय नहीं हैं। इसका अर्थ यदि यह है कि यह सब कवि-

तायें बंगालियों के रुचिविरुद्ध है, तब तो ये काव्य बंगाल की सरज़मीन पर उत्पन्न ही नहीं होते, और यदि अंकुर उठता भी तो दो-चार दिन में जड़ समेत सूख जाता। कहना न होगा कि ऐसा होने का कोई भी लक्षण नहीं मालूम पड़ रहा है। इस दृष्टि से देखा जाय तो आलू मौलिक रूप से राष्ट्रीय नहीं है, किन्तु अब वह राष्ट्रीय भोजन तालिका में ही सब तरह की देशी उस तरीके की चीजों को पार कर गया है। राष्ट्रीय कुलशील की दुहाई देकर हम उस युग की "पांचली"+ नामक कविता पद्धति की जितनी भी प्रशसा करना चाहें करें कोई भी स्वदेशवत्सल सब छोड़कर "पांचाली" को राष्ट्रीय विद्यालय में चलाने की सिफारिस नहीं करेगा। नदी अपने लिये आप ही रास्ता काट लेती है, उसे नहर की तरह रास्ता काटकर कृत्रिम रूप से जिलाने की आवश्यकता नहीं होती। आधुनिक कविता ने इसी प्रकार अपने ही वेग के द्वारा देश के लोगों के चित्त में स्थान कर लिया है, और वह दिन बदिन गहरा और चौड़ा होता जा रहा है।"

वंकिमचन्द्र

इसी बात को और स्पष्ट करते हुए कवीन्द्र ने लिखा "वंकिमचन्द्र ने दुर्गेशनन्दिनी, कपालकुंडला तथा विषवृक्ष को लेकर बँगला साहित्य को अर्पण किया। कहना न होगा इनका रंग-ढंग तथा शैली अंग्रेज़ी साहित्य के अनुरूप थी। पंडितों ने इनकी भाषारीति की खिल्ली उड़ाई है, उधर समाजधुरन्धरों ने इनकी यह कहकर निन्दा की है कि सामाजिक सनातन रीति से हटाकरयह कहानियाँ देश के मन को अशुद्ध कर देती हैं, किन्तु देखा गया कि कट्टर से कट्टर निष्ठावाली सासों ने पतोहुओं से अनुरोध करना शुरू किया कि वे वंकिम की पुस्तकों को उन्हें पढ़कर सुनावे, वटतल्ला में छपे हुए पुराणों से रस्सी से बँधा हुआ उनका चश्मा दूर हट गया था। यह विदेशी चीजें हमें अच्छी नहीं लगनी चाहिये कहकर किसी ने इनके प्रति लोगों की अश्रद्धा उत्पन्न नहीं कर पाई।"

+पांचाली को हम बँगला आल्हा कह सकते हैं।

पाश्चात्य प्रभाव, किन्तु......

कवीन्द्र के प्रति कोई असम्मान न करते हुए मेरा यह विचार है कि आधुनिक बँगला साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव को श्री मोहितलाल मजुमदारने इससे कहीं अच्छी तरह समझाया है। मोहितलाल स्वयं एक प्रतिष्ठित बँगला कवि हैं। "उन्होंने लिखा है लेकिन इस बात को भूलने से नहीं चलेगा कि यह साहित्यरस चाहे कितना भी उत्कृष्ट हो, यदि उसकी भाषा ने हमारे हृदय को स्पर्श न किया हो, यदि उसके भाव तथा कल्पनाओं ने हमारी रसपिपासा का उद्रेक भर न कर हमारे साथ मार्मिक सम्बन्ध की सृष्टि न कर पाई हो तो वह हमारा साहित्य नहीं हुआ। विदेशी भाव तथा कल्पनाओं को हम विदेशी साहित्य में भी उपभोग करते हैं, किन्तु उनसे हमारा मार्मिक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता, तभी तो विदेशी सुसाहित्य का अनुवाद ही स्वदेशी साहित्य की मर्यादा प्राप्त नहीं कर पाता, हमें पृथक राष्ट्रीय साहित्य की ज़रूरत पड़ती है। इस प्रारंभिक युग में जिन लोगों ने विदेशी भावों, कल्पनाओं तथा शैली को अपने में जज्ब कर लिया, अर्थात् उनसे अनुप्रेरणा लेकर अपने लिये एक स्वतन्त्र कल्पनाकर उसमें अपनी स्वतन्त्र प्रतिभा की जान फूँक पाई, वे ही इस युग के साहित्यकार हैं। सृजन करने की इसी शक्ति को हम दिव्यशक्ति कहते हैं।"

साहित्य और जाति की प्रतिभा

"यहीं पर साहित्य के साथ राष्ट्रीयता का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। कवि की आत्मा केवल एक निर्विशेष मानवात्मा नहीं है। रूप की जो पिपासा कवि प्रकृति की स्थायी सम्पत्ति है, जिसके वशवर्ती होकर कवि के भाव कलामय हो जाते हैं, और निर्विशेष विशेष में परिणत हो जाता है, कवि का वह कविधर्म एक विशिष्ट प्राण का द्योतक है। प्राण का यह विशिष्ट स्वरूप है, तभी वे भाव कलामय रूप में प्रकाशित हो सके। इस विशिष्ट प्राणधर्म के बग़ैर

साहित्य में प्राण का संचार नहीं होता, यदि देखा जाय तो मालूम होगा कि युगों की राष्ट्रीय चेतना, उसका भूत तथा वर्तमान जोकि उसके जाग्रत तथा सुप्त चेतना *Subconsciousness* में प्रसारित है, कवि के वैयक्तिक प्राण की तह में है।"

बँगला के प्राचीन कवि

बँगला का प्राचीन साहित्य हिन्दी की तरह समृद्ध चाहे न हो, किन्तु उसमें बहुत से ऐसे कवि जैसे काशीरामदास, कृत्तिवास, मुकुन्दराम चक्रवर्ती, गोविन्ददास, भारतचन्द्र राय, रामप्रसाद सेन, उद्धवदास आदि हुए हैं जिनके सम्बन्ध मे हम आज चाहे कुछ भी कहें यह मानना ही पड़ेगा कि बँगाली जाति की आत्मा के साथ उनका अन्तरंग सम्बन्ध था, किन्तु जाति+ की आत्मा कोई शाश्वत वस्तु नहीं, वह भी बदलती रहती है। बाहरी प्रभाव जिनमें आर्थिक कारण है, आवागमन की सुविधा या अभाव, विदेशी साहित्य ही के कारण जिस चीज़ को हमने राष्ट्र की आत्मा कहा है वह बदलती या विकसित होती है। इसीको दूसरे शब्दों में *Zeit-geist* याने युगमन कहते हैं, यद्यपि युगमन राष्ट्रीय आत्मा से कहीं व्यापक शब्द है। बँगला का पदावली साहित्य चाहे कितना भी सुन्दर रहा हो, और सुन्दर वह है इसमें सन्देह नहीं, किन्तु जब पाश्चात्य के साथ प्राच्य का निकट सम्बन्ध हो गया उसकी समाज व्यवस्था, आर्थिक संगठन तथा साहित्य हमारे ऊपर प्रभाव डालने लगा तो पदावली साहित्य की विचारधारा तथा शैली हमारे लिये एक दूर की चीज़ हो गई।"

"वैष्णव कवियों ने जिस तरीके से तथा जिस दृष्टि से जगत को, जीवन को तथा मनुष्य को देखा था, नये युग के इन कवियों के लिये उन्हें उसी दृष्टि से देखना असंभव था। वैष्णव कविता चाहे जितनी महान तथा सुन्दर रही हो, वही

+बंगाली शब्द के साथ जाति शब्द का प्रयोग *nation* अर्थ में नहीं किया गया —लेखक

कविता का एकमात्र आदर्श है, या उसीको बंगाल के कवि हमेशा अपनाकर पड़े रहेंगे यह एक व्यर्थ की आकांक्षा है। भावुकता का स्रोत हमेशा नई धारा में नये दृश्यों के बीच प्रवाहित होता है, उसे बाँधकर कौन रख सकता है, भला भागीरथी को फिर गंगोत्री में कौन ले जा सकता है ? बँगाल के साहित्य में यह पट परिवर्तन, तथा वातावरण के बदल जाने को हम केवल मोह कहकर टाल दें यह नहीं हो सकता। नये युग का बँगला साहित्य केवल अंग्रेज़ी साहित्य की क्षीण प्रतिध्वनि था, यह कहना ग़लत होगा। मान लिया जाय कि अंग्रेज भारतवर्ष में नहीं आते तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि बँगला में घुमाफिराकर विद्यापति और चंडीदास की ही सृष्टि होती। यदि यह मान लिया जाय कि बँगला के इन कवियों में प्रतिभा थी तो मानना ही पड़ेगा कि ये कलाकार युगमन के तक़ाजे के अनुसार साहित्य को नये तरीके से तोड़कर सृजन करते"।

साहित्यिक शुद्धता

"जगत में कोई भी जाति ऐसी नहीं है जो सम्पूर्ण रूप से अपने साहित्यिक रक्त की शुद्धता को क़ायम रख सकी हो। शायद ऐसी कोई जाति हो भी नहीं सकती। वर्णशंकरत्व से ही जातियों की उत्पत्ति हुई है। दुनिया का कोई भी साहित्य स्वयंसिद्ध नहीं है, विशेषकर जबकि आवागमन सुविधाजनक हो गया, तब तो इच्छा करने पर भी कोई जाति कछुए की तरह अपने साहित्य को अपने अन्दर बन्द नहीं कर सकती थी।"

अंग्रेज़ी साहित्य के तीन महायुग

"अंग्रेज़ी साहित्य की बात ली जाय। अंग्रेज़ी साहित्य को तीन महायुगों में विभक्त करने पर देखा जायगा कि तीनों महायुग के मूल में विदेशी प्रभाव है! पहिले युग के अंग्रेज़ी साहित्य के उत्स-स्थल चासर ने अपनी कविता की प्रेरणा फ्रान्स और इतली से ली थी। इसके बाद एलिज़ाबेथीय युग का आरंभ जिन लोगों से

हुआ था वह वाट (*Watt*) तथा सरे (*Surrey*) अपना बीज इतली से ले आये थे। वर्ड्सवर्थ ने पहिले फ्रान्स से प्रेरणा ली फिर कोलरिज के साथ जर्मनी घूमकर लौटने के बाद जर्मनी से कविता की प्रेरणा ली। आधुनिक रासेटी ने इतली और फ्रान्स से, मोरिस ने स्कन्डिनेविया के सागा साहित्य से, तथा स्विनबर्न ने सभी जगह से प्रेरणा ली। इसी प्रकार यदि फ्रेन्च साहित्य ने स्पेन, जर्मनी तथा अंग्रेज़ी साहित्य से अनुप्रेरणा न ली होती तो वह भी अपने *Troubere* और *Troubadour* तक ही समाप्त हो जाता। सारा लैटिन साहित्य तो ग्रीक साहित्य की छाया में ही उपजा है, फिर भी लैटिन साहित्य में अपनी विशेषता है इसे कौन अस्वीकार कर सकता है। ग्रीक साहित्य की इस बाढ़ के विरुद्ध केटो कितना लड़े, किन्तु उन्होंने अन्त तक स्वयं ही युगमन के प्रभाव में आकर अस्सी साल की उम्र में ग्रीक सीखना शुरू किया !"+

पाश्चात्य प्रभाव की महत्ता

बँगला साहित्य के समालोचकों ने पाश्चात्य के इस प्रभाव को घटाकर दिखाने की चेष्टा नहीं की। स्वयं रवीन्द्रनाथ ने भी देखा गया ऐसा नहीं किया। श्री नलिनीकान्त गुप्त ने आधुनिक बँगला साहित्य पर लिखते हुए स्पष्ट ही लिखा है "आधुनिक बँगला साहित्य के जीवन में हम तीन सन्धिस्थल देखते हैं, और तीन अवसरों पर तीन महापुरुषों का आविर्भाव हुआ है। इन तीनों विभूतियों ने नवजीवन की जो धारा बहाई है उसका उत्स उन्होंने पाश्चात्य या और भी साफ़-साफ़ कहा जाय तो इङ्गलैंड से पाया है। पहिले राममोहन, दूसरे मधुसूदन, तीसरे रवीन्द्रनाथ। आधुनिक बँगला साहित्य में ये तीनों एक-एक युग के प्रवर्तक हैं, विदेशी शैली तथा साहित्य में निस्नात होकर इन तीनों ने बँगला को घर की चहारदीवारी से निकालकर विश्वसभा में प्रतिष्ठित किया। चासर

+नलिनीकान्त गुप्त—प्रवासी ज्येष्ठ १३२५)

के बाद डेढ़ सौ वर्ष तक अङ्गरेज़ी साहित्य में जैसे एक अंधकार का युग गया है उसी तरह चंडीदास तथा वैष्णव कवियों के बाद बँगला साहित्य कई सौ वर्ष अंधकार में पड़ा था। इस दौरान में कवियों का एकदम अभाव था यह बात नहीं, पद्य प्रचुरता से लिखा गया, किन्तु कवित्व वह धधकती, सुलगती, जलती हुई प्रतिभा की मशाल हम किसी के हाथ में नहीं देखते। जो कुछ था उसे हम मुमूर्षु के किसी प्रकार दो घड़ी तक जीते रहने का प्रयास मात्र कह सकते हैं। इस जीवनरूपी नदी का मुँह पाश्चात्य भावों से ओतप्रोत राममोहन ने खोल दिया। मधुसूदन ने वज्रकी तरह प्रतिभा के प्रहार से उसके दोनों किनारों को तोड़कर उसका मुँह चौड़ा कर दिया। रवीन्द्रनाथ ने तो खैर इस धारा को एकाकारकर उसमें एक महाप्लावन को ही ला दिया।"

बँगला की उन्नति का कारण

नलिनी बाबू ने लिखा है और मैं भी इसे मानता हूँ कि भारतवर्ष की भाषाओं में बँगला भाषा जो इस साहित्यिक उच्चता को पहुँची उसका कारण है कि जब पहिले-पहल अंग्रेज़ी प्रभाव यहाँ आया तो बंगाल ने बड़े तपाक से उसे अपनाया। "विदेशी भावुकता के पहिले प्लावन में बंगाल यदि इस प्रकार अपने को छोड़ न देता, यदि वह जाति नष्ट होने के भय से पीछे हट जाता, तो वह महाजीवन के स्रोत से दूर पड़ा रहता। संभव है हम पदावली साहित्य का चर्वित चर्वण करते रहते, किन्तु हमें न "मेघनादवध" न 'कपालकुंडला' न 'विषवृक्ष' न 'सोनार तरी' का दर्शन होता।" फिर बँगला को विश्वसाहित्य में तो कभी भी स्थान न मिलता।

नया साहित्य

"पाश्चात्य के प्रभाव में आने के बाद बँगला साहित्य का जो निर्माण होने लगा, वह पहिले के बँगला साहित्य से दूसरी तरह का था इसमें सन्देह नहीं। चंडीदास से दाशरथी राय तक बंगला

साहित्य का विस्तार जितना था, इसका क्षेत्र उससे कहीं बढ़कर था। इस नये साहित्य में जो विचार तथा भाव आये, वे दाशरथी राय ऐसे कवियों की कल्पना के बाहर की बातें थीं। इस नये साहित्य के रंगढंग, गति यहाँ तक कि प्राण में भी विभिन्नता थी। यह बारबार कहा जाता है कि इस नये युग के प्रारंभ में बंगालियों के सन्मुख जब पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की प्रकांड थाली परोसी गई तो भूखा बंगाली उस पर टूट पड़ा। उसने खाया तो खूब, किन्तु हज़म नहीं हुआ। इसके फलस्वरूप जो हमें नये युग के साहित्य के नाम से हमारे सामने आया, वह उनके हृदय का रक्त नहीं था, बल्कि खाये हुए अजीर्ण द्रव्यों का उदगार मात्र था। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे उद्गार भी साहित्य के दरबार में आये।"+

पाश्चात्य प्रभाव से पथभ्रष्ट

सच बात तो यह है पाश्चात्य प्रभाव जब इस तरह एक प्रबल आँधी की तरह बँगला के कवि साहित्यिकों के सूक्ष्म जगत में आया, तो उनमें से बहुतों के पैर उखड़ गये, कई लड़खड़ा कर रह गये। उनका यह लड़खड़ाना छूटा नहीं। बड़े बड़ों का यही हाल रहा। फलस्वरूप बँगला काव्य में जब यह पाश्चात्य प्रभाव की बाढ़ का युग था, उसी समय एक दूसरा आन्दोलन भी वहाँ चल निकला वह यह कि इससे मुक्त हो जाओ। इस युग के बँगला के कवियों में हम इन्हीं शक्तियों का धन और ऋण देखते हैं। "कवि हेमचन्द्र में हम एक विशुद्ध बंगाली का हृदय पाते हैं, किन्तु वह प्राण बलिष्ठ होने पर भी अलस है, वह जोरों से इस आँधी से आन्दोलित ही नहीं हुआ। जिस वाञ्रग्निकी दप्त रोशनी से माइकेल मधुसूदन की सजग चेतना स्तंभित हो गई थी, किन्तु फिर भी उस रोशनी में उसने बँगला की काव्यलक्ष्मी को प्रत्यक्ष किया, वही वज्राग्नि हेमचन्द्र का स्थूल आत्मतृप्त बंगालीपन को भेद नहीं कर पाया। कवि नवीनचन्द्र में आवेग था, किन्तु

डा० नरेशचन्द सेन गुप्त

वह आवेग अन्ध था, वे बिलकुल आत्मसचेतन नहीं थे, आत्माभिमानी थे। उनके मन में विचार तथा कल्पनाओं का अवाध अधिकार था, फिर भी वह ऊपर ही ऊपर बह जाते थे, अंतरंग में पैठकर वह काव्यसृष्टि की गहरी प्रेरणा नहीं हो पाती। एक एक *idea* जैसे उन पर दखल जमा लेता था, अङ्गरेजी विद्या का गर्व इसके मूल में था। इस अङ्गरेज़ी शिक्षा बल्कि उसके गर्व के साथ अत्यन्त देशी अतिभावुकता मिलकर जिन काव्यों की सृष्टि हुई है उन्हें देखकर हृदय में एक अजीब गुदगुदी पैदा होती है।" +अवश्य ये ही बातें सुरेन्द्रनाथ मजुमदार में जाकर एक कलामय समन्वय में पहुँचती हैं। अठारहवीं सदी के अंग्रेजी साहित्य में जो विचारशीलता तथा युक्ति की प्रधानता थी उसके साथ बंगाली भावुकता के समन्वय की चेष्टा उन्होंने की। उनकी यह चेष्टा पूर्ण रूप से सफलता मंडित न हो सकी, इस असाध्य साधन के लिये एक महान प्रतिभा की ज़रूरत थी, फिर भी वे एक मध्य मार्ग अवलम्बन करने में सफल हुए। उनकी रचनाओं में कवित्य और बुद्धि का एक सुन्दर तारतम्य हम पाते हैं। न हेमचन्द्र की तरह महाकाव्य-लेखन के प्रयास में ही उन्होंने अपनी सारी शक्ति व्यय न कर डाली न नवीनचन्द्र की तरह महाकाव्य रचना के नाम पर धर्म तथा राजनैतिक वक्तृओं को उन्होंने अतुकान्त कविता में लिपिवद्ध किया।

आधुनिक बङ्गला का उद्भव काल

नवीन बँगला साहित्य के यथार्थ उद्भव काल हम १८५०-१८८० ले सकते हैं। राजनीति में यही काल प्रबल आलोड़न विलोड़न का समय है। १८५७ का ग़दर कोई पूर्वापरसम्बन्धहीन घटना नहीं है, उसका मूल १८५७ से पहिले के काल में प्रसारित है। ग़दर के इधर तथा उधर जो आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन हुए, जो विचारों, स्वार्थों, आदर्शों तथा पद्धतियों का संघर्ष हुआ उसके फलस्वरूप साहित्य

+श्री मोहितलाल मजुमदार...

में एक नये युग का प्रवर्तन कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। माईकेल मधुसूदन का मेघनाद-वध, बिहारीलाल का सारदामंगल, नवीनचन्द्र का पलाशीर युद्ध, हेमचन्द्र की कवितावली इसी युग में लिखी गई थीं। ईश्वर गुप्त ने जिस संघर्ष बल्कि आक्रमण की एक झलक ही देखकर अपना किवाड़ बन्द कर लिया था, वह उनकी मृत्यु के बाद ही वङ्गला साहित्य को पल्लवित पुष्पित करने में समर्थ हुई। पहिले ही कहा जा चुका बहुत से साहित्यिक इस नई रोशनी में वर्णांध हो गये, उनके पैर लड़खड़ा गये, यह स्वाभाविक था। समय ने ऐसे कवियों तथा उनकी कविताओं को ग्रस लिया है। इसमें कोई दुःख की बात नहीं है, यह भी स्वाभाविक है।

सिलसिला न रहा

अङ्गरेजी सभ्यता, साहित्य के संस्पर्श के पहिले हम कवि भारतचन्द्र में जो कलात्मक शैली, निखरी हुई भाषा तथा सौष्ठव का दर्शन पाते हैं, वह क़ायम नहीं रह सका। इसका कारण राजनैतिक अव्यवस्थितता तथा सामाजिक कूपमंडुकता थी। बात यह है वह संस्कृति ही लुप्त हो चुकी। यदि भारतचन्द्र के बाद साहित्य और भाषा की प्रगति का सिलसिला क़ायम रहता तो उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में हमें ईश्वर गुप्त तथा "कविवालों" की रचना से अच्छी चीज़ मिलती, इस प्रकार बाद को बिहारीलाल, माईकेल आदि प्रतिभाओं का बहुत कुछ आभास भाषा तथा शैली को अपने उपयोगी करने में व्ययित करना पड़ा।

माइकेल और बिहारीलाल

बँगला के आधुनिक साहित्य के इस प्रारंभिक युग में दो कवि बहुत ज़बर्दस्त हुए हैं। एक माइकेल मधुसूदन दत्त, दूसरे बिहारीलाल। हम इन पर ज़रा तफसील के साथ आलोचना करेंगे। स्मरण रहे कि बन्देमातरम मंत्र के ऋषि बङ्किमचन्द्र भी इसी युग की

विभूतियों में हैं, किन्तु चूँकि वे कवि नहीं थे अर्थात् कवि से बढ़कर कहीं बड़े औपन्यासिक तथा गद्यलेखक थे, इसलिये उनकी प्रतिभा का विश्लेषण हमारे इस ग्रन्थ के दायरे में नहीं आता। फिर भी अपने समसामयिक तथा बाद के काव्य साहित्य पर उनका गहरा असर पड़ा है, इस दृष्टि से उन पर कुछ कहकर तभी हम माइकेल तथा विहारीलाल पर अपना वक्तव्य कहेंगे।

वंकिम एक साहित्यिक क्रान्तकारी

वंकिमचन्द्र आज हमारे सामने क्रान्तिकारी तो क्या शायद एक प्रतिक्रियावादी जँचे, किन्तु उस ज़माने में जब वे थे एक भयंकर क्रान्तिकारी के रूप में ही दृष्टिगोचर हुए होंगे इसमें सन्देह नहीं। जाति की विचार-शक्ति लुप्त हो चुकी थी, विश्वास ने कुसंस्कार का बाज़ू कसकर थाम लिया था। किसी भी ज़िन्दा सिद्धान्त के साथ जाति का संस्पर्श नहीं था। ऐसे समय में विपुल ऐश्वर्यशाली पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का यहाँ प्रवेश हुआ। वङ्किम ने इसको श्रद्धा के साथ विचार किया। वङ्किम के अपने शब्दों में ही लीजिये, वे श्रीमद्भगवद्गीता की भूमिका में लिखते हैं "फिर भी मुझे यह कहना ही पड़ता है कि जिसने पाश्चात्य साहित्य, विज्ञान और दर्शन के साथ परिचय प्राप्त कर लिया, वह हर क्षेत्र में प्राचीनों का साथ दे सकेगा। यह संभव नहीं जो लोग समझते हैं पाश्चात्य पंडितों ने जो कुछ कहा है वह सभी ग़लत है, और हमारे प्राचीनों ने जो कुछ कहा है वह सब ठीक है, मुझे उनसे कोई सहानुभूति नहीं।"

इससे भी स्पष्ट लीजिये, वङ्किम लिखते हैं—

"तीन-चार हज़ार वर्ष पहिले भारतवर्ष के लिये जो विधियाँ संस्थापित हुई थीं, आज हरफ़ बहरफ़ उनसे मिलकर कोई नहीं चल सकता। वे ही ऋषिगण यदि आज भारतवर्ष में मौजूद होते तो वे ही कह उठते—'नहीं, यह नहीं चल सकता। यदि उन विधियों

का उसी प्रकार पालन किया जाय तो हमारे प्रचारित धर्म का उसके द्वारा मार्मिक विरोध ही होगा।' धर्म का वह मर्मभाग अमर है, चिरन्तन है, हमेशा उससे मानव जाति का कल्याण ही होगा, क्योंकि मनुष्य-प्रकृति में ही उनकी नींव है। विशेष विधियाँ समयानुसार ही सब धर्म में होती है। उसको समय के अनुसार त्याग कर देना चाहिये या बदलना चाहिये।"

वंकिम-साहित्य

वंकिमचन्द्र की महत्ता केवल इस बात में नहीं है कि वे एक जबर्दस्त सुधारक थे, राममोहन ने इसके पहिले इस गुण से भारत को और बंगाल को एक रास्ता दिखलाया था, किन्तु वंकिम की महत्ता इस बात में थी कि वे एक स्रष्टा थे, और उनकी सृष्टि कला को वाहन बनाकर चलती थी। वंकिम-साहित्य बहुत कुछ हद तक मध्यवित्त श्रेणी का साहित्य है, उसके अन्दर देश के आम लोगों का चित्र उनके सुखदुःख की धड़कन हमें नहीं सुनने को मिलती, फिर भी हम यदि कान डालकर सुनें तो जो बहुत-सी समस्यायें उस युग के भारतीय समाज को आलोड़ित कर रहीं थीं तथा जो आदर्शों का संघर्ष जोरों के साथ चल रहा था उनको सुन सकते हैं।

वंकिमचन्द्र भाववादी थे, वास्तववाद से उनका सम्बन्ध था, किन्तु उतना ही जिससे उनके आदर्श को पैर जमाने का मौका मिले, और वह हवा में उड़ता हुआ न मालूम पड़े। हम जिसे आज-कल साहित्यिक वास्तविकता कहते हैं वह वंकिमचन्द्र के लिये बिलकुल अज्ञात बात थी ऐसा कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। आजकल के विभाजन के अनुसार वंकिम को हम रोमांचवादी *Romantic* कह सकते हैं, वंकिम की तुलना अंग्रेज लेखक स्काट से की जाती है, यह ठीक ही है।

समालोचक मोहितलाल के अनुसार "वंकिम के प्रथम उपन्यास 'दुर्गेशनन्दिनी' में साहित्यिक प्रेरणा के अतिरिक्त कुछ नहीं था।

'दुर्गेशनन्दिनी, बंगला भाषा का पहिला रोमान्स था, बिलकुल अंग्रेज़ी रोमान्स के ढंग पर लिखा हुआ। 'मृणालिनी', 'युगलाङ्गुरीय' तथा 'राधाराणी' इसी आदर्शानुसार लिखे गये थे। हाँ 'मृणालिनी' के कथानक में देशप्रेम सबसे पहिले दिखाई पड़ा। बंकिमचन्द्र के लिखे हुए उपन्यासों में 'विषवृक्ष' का नम्बर चौथा है, इसमें समाज की समस्यायें सामने आती हैं; 'चन्द्रशेखर' और 'कृष्णकान्तेर विल' एक ही प्रेरणा का नतीजा है। 'आनन्द मठ' और 'राजसिंह' में देश-प्रेम, 'देवी चौधुरानी' और 'सीताराम' में धर्म समस्या, 'रजनी' में मनस्तत्व और 'इन्दिरा' में केवल गल्प रचना का आनन्द है। विशुद्ध उपन्यास, अर्थात् जिनमें समाजनैतिक या धर्मनैतिक कोई अभिप्राय नहीं है उनकी संख्या बहुत ही कम है, और उनमें 'कपालकुंडला ही सबसे बढ़कर काव्य बना। जिन उपन्यासों में स्वदेश, समाज, धर्म या नीति की प्रेरणा है उन्हीं में बंकिमचन्द्र की कल्पना सबसे अधिक स्फूर्ति प्राप्त कर सकी, चरित्र की महिमा घटनासन्निवेश की दक्षता के कारण उनमें नाटकीय सौन्दर्य आ गया है। समस्याओं की गुत्थियाँ बड़ी पेचीली होने पर भी मालूम होता है बंकिम की प्रतिभा ने चट्टान की रगड़ से इस्पात की तरह चिंगारियाँ बरसाई हैं। बंकिम फिर भी अपने उपन्यासों से बड़े थे। उनके ग्रन्थों को पढ़ते-पढ़ते बारबार यह उद्गार निकल पड़ता है— *Ecce Homo* "यही आदमी है ?"

बंकिम साहित्य में राष्ट्रीयता

पहिले ही कहा जा चुका है बंकिम समाज की एक विशेष श्रेणी के ही इर्द-गिर्द घूमते रहे, किन्तु उनके उपन्यासों ने एक बात में बड़ी मदद दी, वह है राष्ट्रीयता का निर्माण। बंकिम ने तर्कों पर इस राष्ट्रीयता नामक चीज़ को तर्कों से भारतवासियों के मन में प्रतिष्ठित करने की चेष्टा नहीं की, उन्होंने उसके अस्तित्व को एक भारतवासी के जीवन में वैसे ही स्वतःसिद्ध मान लिया जैसे एक

अङ्गरेज़ में माना जाने का रिवाज है या था फिर 'आनन्दमठ' 'राजसिंह' आदि लिखना शुरू किया। भारतवर्ष में अखिल भारतीय राष्ट्रीयता-बोध एक बहुत बड़ी बात है, इसके निर्माण में वंकिम का एक बड़ा भाग है।

माइकेल की कविता

वंकिम की इस थोड़ी-सी ज़रूरी आलोचना के बाद अब हम माइकेल मधुसूदन की कविता की आलोचना करेंगे। माइकेल की जीवनी संक्षेप में यह है कि वे पाश्चात्य की क़रीब-क़रीब सभी प्रधान भाषा जानते थे, पाश्चात्य में उन्होंने ख़ूब भ्रमण भी किया था। पहिले उन्होंने अङ्गरेज़ी में कविता लिखी, किन्तु बाद को सुझाने पर बँगला में लिखने लगे। एक स्त्री के प्रेम में पड़कर वे इसाई हो गये थे। कहना न होगा कि ऐसे व्यक्ति में पाश्चात्य कितनी प्रबलता के साथ होगा, किन्तु वह चाहे कितना भी प्रबल हो कवित्व उनमें प्रबलतर था, तभी वे न तो गुमराह हुए, न उन्होंने हवा के सामने घुटना टेक दिया, न उनका काव्य कहीं अजीर्णरोगी का उद्गार ज्ञात होता है। 'माइकेल की काव्यप्रेरणा में सबसे प्रबल जो है वह है बाहरी वस्तु का बाहरी रूप। केवल विचित्र वस्तुओं का संग्रहकर उनको दूर में स्थापनकर या पास में सजाकर उनके दर्शन या स्पर्शन के ही आनन्द में ही वे विभोर हैं। छोटी या बड़ी तस्वीर बात की बात में बातों से आँखों के सामने खड़ी कर देने में, या कारीगर की तरह मूर्ति की सुषमा खोज निकालने में उन्हें कितना आनन्द है, उनकी कल्पना मानो उल्लास की बिह्वलता में थिरकने लगती है। उपमा के बाद उपमा का जाल बिछाकर वे जिस रूप को प्रकाश करते हैं वह विचारों की झलक नहीं, बाहरी वस्तुओं के विन्यास का सौन्दर्य है। विषाद की प्रतिमा स्वरूपा बन्दिनी सीता के माथे पर सेंदुर को वे गोधूलि के ललाट में नक्षत्र रत्न की भाँति देखते हैं। वे वस्तु को भाव के द्वारा या भाव को वस्तु के द्वारा स्पष्ट करने के आदी नहीं, वे तो

एक वस्तु को स्पष्ट करने के लिये बहुत-सी वस्तुओं को लाकर आँख के सामने ढेर कर देते हैं, वे चित्र को चित्र से ही स्पष्ट करते हैं। आलोक और छाया इन दो ही वर्णों में संगमर्मर की मूर्ति जैसे अपने को प्रकाशित करती है, उसी प्रकार उनकी बनाई हुई मूर्तियाँ अत्यन्त सरल और आम सुख-दुःख की छाया और आलोक से हमारे सामने स्पष्ट हो जाती हैं। इसलिये देखने में मिल्टन को अनुसरण करते हुए मालूम होने पर भी मधुसूदन मनुष्य की दुनिया को पीछे और नीचे छोड़कर महाकाव्य के अत्युच्च कल्पलोक में सीमाहीन दिग्देश में अपनी कल्पना को भेज नहीं पाये। मनुष्य को ही उन्होंने बड़ा करके देखा था। पुरुष का पौरुष तथा नारी के नारीत्व ने उनके मन की जीभ में जो रस का संचार किया था, उसी की व्याकुलता में ये काव्य लिखे गये हैं। माइकेल को पढ़ने से यह मालूम होता है जैसे इस गायनप्राण बँगला कवि ने एक नये जगत का आविष्कार किया हो, वहाँ हृदय-समुद्र की बलखाई हुई लहरों की अलस फेनरेखा बुलबुलों की माला में विलुप्त हो जाती है, किन्तु उसी के साथ दूर से आया हुआ जल का कलकल और भग्ननौका-यात्री का आर्तनाद एकान्त निकुंज के वंशीरव को एक अपूर्व वेदना से प्रतिध्वनित कर देता है। कविकल्पना के इस नये अभियान ने नये साहित्य की गति को एक निर्देश दिया था, फलस्वरूप मन के सूक्ष्म लीलाविलासों से बेखबर होकर मनुष्य को देह के राज्य में खड़ा करवाकर उसके स्वाभाविक आकार, प्रकार तथा रूप को देखने की आकांक्षा। जगी पाप-पुण्य से परे उसके प्राणों की उमंगें नियति के अमोघ नियम से कैसी भीषण-मधुर हो उठती हैं, इस बँगला कवि के चित्त में उसी की प्रेरणा जगी थी।'+

माइकेल पर कवीन्द्र

कवीन्द्र ने माइकेल के सम्बन्ध में लिखा है "आधुनिक बँगला

+देखो आधुनिक बाँगला साहित्य, पृ : १६

के कविता-साहित्य में माइकेल मधुसूदन ने जो इसके प्रथम द्वार-मोचक थे सबसे बढ़कर दुःसाहस दिखलाया। उन्होंने जिस मिलटनी बाढ़ से दुरूह शब्दतरंग उठाकर बंगला भाषा को तरंगित कर दिया, उससे बढ़कर अपरिचित और अनभ्यस्त बंगाली पाठकों के लिये कुछ भी नहीं था। यह बिलकुल अपरिचित और अनभ्यस्त होते हुए भी इतना अपरिचित नहीं था कि बंगाली पाठक इसे समझ ही न सके। बंगाली शिक्षित समाज अङ्गरेजी साहित्य के ज़रिये से इस विस्तृततर जगत से परिचित हो चुका था उस समय के शिक्षित बंगाली मिलटन, शेक्सपियर की आज से ज़्यादा चर्चा करते थे। इसलिये ज्यों ही बँगला भाषा के वाद्ययन्त्र के ज़रिये से वही परिचित ताल, लययुक्त जगत उनके सामने आया तो प्रशंसा करने लगे। मधुसूदन की प्रतिभा के कारण बँगला काव्य के रंगमंच पर पहिले-पहल प्राच्य पाश्चात्य गले मिले।"

माइकेल का मूल्य

बँगला साहित्य में पाश्चात्य का प्रभाव इस प्रकार द्रुतता के साथ रंग लाने लगा और अब भी ला रहा है, उसका श्रेय बहुत अंश में पद्यसाहित्य में मधुसूदन को है। रवीन्द्रनाथ ने जो कहा है कि वे बँगला पद्यसाहित्य के द्वारमोचनकारी कहाँ हैं वह ठीक ही है। प्राक-पाश्चात्य बँगला तथा भारतीय साहित्य में कुछ विशेष विषय थे जैसे राम और कृष्ण की कथा, वैष्णवी भक्ति का विभिन्न रूप, बहुत हुआ दो-चार राजे-महाराजे की गाथा गा दी गई। तुलसीदास, सूरदास, चंडीदास विद्यापति,चन्द्रवरदाई, भारतचन्द्र, तुकाराम इन्हीं को लेकर गाते रहे। इसकी सब। *permutations* और *combinations* गाये, लिखे जा चुके थे। भारतीय कविता साहित्य इन्हीं की चहार-दीवारी में घूम-घूमकर कातर क्रन्दन कर रहा था। इस बास्टिल (*Bastille*) से उद्धार करने के लिये एक विचारगत क्रान्ति की ज़रूरत थी। वह

क्रान्ति पाश्चात्य प्रभाव के कारण संभव हुई। मधुसूदन ही वे क्रान्तिकारी थे, जिन्होंने इसका फायदा उठाकर इसको संभव किया। यह बात नहीं कि माइकेल ने बजाय राम, कृष्ण और पौराणिक गाथाओं को बिलकुल त्याग दिया बल्कि सच बात तो यह है माइकेल ने अपनी श्रेष्ठ रचनायें पौराणिक कहानियों तथा व्यक्तियों के इर्द-गिर्द लिखी, किन्तु उनमें एक नया जीवन, एक क्रान्तिकारी रूप से अभिनव दृष्टिकोण, एक नई व्याख्या तथा नया तरीका (*approach*) ला दिया।

मेघनादवध काव्य

मधुसूदन की रचनाओं में मेघनादवध सबसे अच्छा है, इसमें हामरे चिर परिचित राम, लक्ष्मण, सीता, रावण, मेघनाद, प्रमीला आती हैं; किन्तु कोई यदि समझे किये. हमारे पुराणों में वर्णित तथा वैष्णव कोमल कान्त पदावली के व्यक्तित्व हैं तो बड़ी गलती होगी। नाम तो वे ही हैं, घटनाओं की परम्परा तथा कथानक की समाप्ति (*denouement*) उसी तरह है, किन्तु ये व्यक्ति बिलकुल बदले हुए हैं। मेघनादवध को पढ़कर ऐसा नहीं प्रतीत होता कि राम-रावण का युद्ध निरवच्छिन्न रूप से भले-बुरे का युद्ध है बल्कि दो उच्चाकांक्षी राजाओं का युद्ध है या ज्यादा से ज्यादा दो सभ्यताओं के संघर्ष का युद्ध है। माईकेल का मेघनाद लक्ष्मण से कोई बुरा आदमी नहीं जँचता, उसका वध कोई दैत्य का विनाश नहीं बल्कि एक शहीद की शहादत के रूप में हमारे सामने आता है। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते ऐसा मालूम होता है कि यदि हम लड़कपन से राम-लक्ष्मण की जय और मेघनाद की पराजय चाहते न आते तो कदाचित् हमें मेघनाद की जय से ही तृप्ति होती। माईकेल ने मेघनाद को करीब एक दूसरा अभिमन्यु बनाकर छोड़ा है। माईकेल की सीता अच्छी है, किन्तु प्रमीला और अच्छी है। सीता से प्रमीला कुछ कम महिमामयी नहीं मालूम होती। प्रमीला

चरित्र एक नाम के अतिरिक्त सम्पूर्ण रूप से माइकेल की ही सृष्टि है, पौराणिकों को इसकी कल्पना भी नहीं थी। देशी और विदेशी सभी आदर्श की तिलोत्तमा यह प्रमीला है, मालूम होता है कविवर ने इस चरित्र को बनाने में अपने वर्णाधार के सब वर्ण खर्च कर डाले हैं। इस प्रकार परिचित नामों को क़ायम रखकर उनको एक नया चरित्र देकर माईकेल ने अपनी कविता के लिये, अपने पाठकों के लिये तथा अपने विचारों के लिये अच्छा ही किया है। इस प्रकार वे जो बातें काव्यामोदियों तक पहुँचाना चाहते थे वह और सुगमता के साथ पहुँच गई। माइकेल ने एक काव्य हेक्टरवध भी लिखा है, किन्तु वह बंगाली पाठकों के सामने सफल न हो सका। भारतीय साहित्य के सौभाग्य से माइकेल ने ओडिसि तथा बाईबल से अपने नायक नहीं चुने, नहीं तो केवल नामों के ही कारण उनकी सफ़लता में सन्देह होता।

वीरांगना काव्य

'वीरांगना' काव्य माइकेल की एक दूसरी अमर रचना है। इसमें वीरांगनाओं के लिखे हुए पत्रों का संग्रह है। द्वारकापति कृष्ण विदर्भाधिपति भीष्मक की कन्या रुक्मिणी का लिखा हुआ एक पत्र इसमें है, जो उन्होंने तब लिखा था जब उनके भाई रुक्मी ने चेदीश्वर शिशुपाल के साथ अपनी बहिन के विवाह की बात चलाई। इस पत्र की लिखनेवाली रुक्मिणी है, किन्तु यह पत्र क़रीब-क़रीब वैसा ही है जैसे एक कालेज की लड़की अपने प्रेमिक को लिखेगी जिसके साथ वह भाग जाने में ही समझती है सुखी होगी। *Wooing* के सब वे ही तरीके हैं, लज्जा भी है साथ-साथ निर्लज्जता भी। वही आग्रह और अपने प्यारे को सातवें आस्मान पर चढ़ाकर अपने को उसकी अयोग्या समझना। उसमें यह नहीं लिखा गया कि मैं लक्ष्मी हूँ तुम नारायण, यह मूर्ख रुक्मी एक ऐसी बात करने जा रहा है जो असंभव है।

कृष्ण के नाम रुक्मिणी

वह लिखती है—

निशार स्वपने हेरि पुरुप-रतने
कायमन अभागिनी सँपियाछे तारे,
देवे साक्षी करि, वरि देवनरोत्तमे
वरभावे । नारी दासी, नारे उच्चारिते
नाम ताँर, स्वामी तिनि

"रात में स्वप्न में मैंने उस नररत्न को देखा, तब से इस अभागिनी ने देवताओं को साक्षी करके इस देव तथा नरों में उत्तम को वर रूप से वरणकर उन्हें देह तथा मन सौंप दिया। मैं नारी हूँ, दासी हूँ, उनका नाम उच्चारण नहीं कर सकती, क्योंकि वे पति जो हैं।"

एक *feminist* को जो नारी की स्वतंत्रता की खोज में जान हथेली पर लिये फिरती है, उसको शायद इसकी अन्तिम पंक्तियों में दासी शब्द खटके, किन्तु यदि क्षमा किया जाय तो मैं कहने का साहस करूँगा कि यह स्वाभाविक है। हाँ, आजकल के प्रेम-पत्रों में यदि उधर से अपने को दासी लिखा जाता है तो इधर से दास भी लिखा जाता है। अस्तु

रुक्मिणी आगे लिखती है—

शुनो एबे दुःख-कथा। हृदय-मन्दिरे
स्थापि' से सुश्याम-मूर्ति, सन्यासिनी यथा
पूजे नित्य इष्टदेवे गहन विपिने,
पूजिताम आमि नाथे। एबे भाग्य-दोषे
चेदीश्वर नरपाल शिशुपाल नामे,
(शुनि जनरव) नाकि आसिछेन हेथा
वरवेशे वरिबारे, हाय अभागीरे

"अब ज़रा मेरी दुःख-कहानी सुनिये। हृदय मन्दिर में उस श्याम मूर्ति को रखकर मैं उसकी उसी तरह पूजा करती थी जैसे कोई सन्यासिनी अपने इष्टदेव को गहन विपिन में पूजती है। अब दुर्भाग्य के कारण सुनती हूँ ऐसी अफ़वाह है कि चेदीश्वर शिशुपाल नामी कोई राजा मुझ अभागी के वररूप में आ रहे हैं।"

कालरूपे शिशुपाल आसिछे सत्वरे—
आइसो ताहार अग्रे। प्रवेशि' ए देशे
हरो मोरे—हरे लये देह तोर पदे
हरिला ए मन जिनि निशार स्वपने।

"सुनती हूँ शिशुपाल काल की तरह जल्दी आ रहा है, आप उससे भी पहिले आयें, और इस देश में प्रवेशकर मुझे हर ले जायँ, और उन्हींको मुझे सौंप दें जिन्होंने रात्रि के स्वप्न में मेरा मन हरण कर लिया।"

नीलध्वज के प्रति जना

"नीलध्वज के प्रति जना" नामक पत्र में हमें जना का जो चरित्र मिलता है वह माता तथा पत्नी के रूप में इतनी महीयसी है कि उसके सामने सब क्लासिकल चरित्र फीके पड़ जाते हैं। जब पांडवों ने अश्वमेध का अश्व छोड़ा तो माहेश्वरीपुरी के युवराज प्रवीर ने उस अश्व को पकड़ लिया, इसके फलस्वरूप अर्जुन के हाथ से वह मारा गया। माहेश्वरीपति महाराज नीलध्वज ने इस पर युद्ध न कर अर्जुन से सन्धि कर ली, इस पर पुत्रशोकातुरा रानी जना ने अपने पति को लिखा—

"राजतोरण में रणवाद्य बज रहा है, घोड़े हिनहिना रहे, हैं हाथी चिंघाड़ रहे हैं, आस्मान में राजपताका फहरा रही है, राजसेना मस्त होकर हुंकार छोड़ रही है, किन्तु आखिर क्यों? क्या तुम इसलिये सज रहे हो कि प्रवीर बेटा का प्रतिशोध लिया चाहते हो और अर्जुन

के रक्त से मेरी शोकाग्नि को बुझाना चाहते हो? यही तो महाराज तुम्हें फबता है, तुम क्षत्रियों के मणि तथा महाबाहु हो। जाओ मतवाले गजराज की तरह किरीटी के ऊपर सूँड़ों को आस्फालन करते हुए टूट पड़ो और उसका गर्व रणस्थल में मेटकर उसके कटे हुए मुंड को ले आओ। उस मूढ़ ने अन्याय युद्ध में एक बालक को मार लिया, जाओ महाबाहु जाकर उसे विनाश कर डालो। मैं इस ज्वाला को फिर भूल जाऊँगी। जन्म में मृत्यु तो खैर है ही, विधाता का यही बिधान है। क्षत्रकुलरत्न वीर प्रवीर सन्मुख समर में खेत में रहकर स्वर्ग को गया है, उस पर रोने की बात ही क्या है। राजन तुम पृथिवी को पालो, क्षत्रधर्म को अपने भुजवल से पालो तो सही।"

"किन्तु यह क्या, जना? तू क्या पागल हो रही है? तुम्हारी सभा में नर्तकी नाच रही है, गायक गा रहा है, वीणा की ध्वनि उमड़ रही है, तुम्हारे पुत्र का हत्यारा तुम्हारे सिंहासन में बैठा है। अब शायद वह तुम्हारा सबसे जबर्दस्त मित्र है। तुम अब अपने अतिथिरत्न की बड़ी सेवा कर रहे हो कितनी लज्जा की बात है। दुःख की यह कहानी मैं अब कहूं तो किससे? क्या माहेश्वरी-पुरीश्वर नीलध्वज आज पुत्रशोक के मारे लुप्तबुद्धि हो चुके हैं? जिस दारुण विधिना ने राज न तुम्हारा पुत्र हर लिया क्या उसीने तुम्हारी बुद्धि का भी सफाया कर दिया? नहीं तो भला मुझे समझाओ कि अर्जुन आज तुम्हारी पुरी का सम्मानित अतिथि किस नाते से हो रहा है? कैसे तुम आज मित्ररूप से उस कर का स्पर्श करते हो जो प्रवीर के रक्त से रंजित हो चुका है। क्या क्षात्रधर्म यही है, तुम्हारा धनुष, तूण, अस्त्र, चर्म कहाँ हैं? दुश्मन के सीने को चुभते हुए शरों का निशाना बनाने के बजाय क्या आज तुम उन्हें बातों से सभा में तुष्ट कर रहे हो? जब तुम्हारी यह बातें फैलेंगी तो देशविदेशों में लोग क्या कहेंगे"

"मैं जानती हूँ लोग पार्थ को रथी श्रेष्ठ कहते हैं। झूठी बात, उसने भेष बदलकर स्वयंवर में लाखों राजाओं को उल्लू बनाया। ब्राह्मण समझकर उसके साथ किस राजा ने ढंग से लड़ाई की होगी? खांडव को दुष्ट ने कृष्ण की सहायता से जलाया, फिर शिखंडी की आड़ लेकर महापापी ने कौरवों के गौरव वृद्ध पितामह भीष्म को हराया। गुरु द्रोणाचार्य को उसने किस छल से मारा ज़रा सोचो तो। जब पृथिवी ने रुष्ट होकर महायशा कर्ण के रथ के पहियों को निगल डाला तब उस बर्बर ने कर्ण को मार डाला। मुझे बतलाओ तुम तो स्वयं महारथी हो। क्या यह सब महारथीपना है? यह तो व्याध का काम है कि छल से सिंह को मारता है, किन्तु सिंह अपने रिपु को पराक्रम से ही परास्त करता है।

"राजन, तुम क्या नहीं जानते हो न मालूम आज किस कारण पार्थ के सामने तुम्हारा सिर झुका हुआ। है क्या ब्राह्मण आज चंडाल के पैर की धूल लेगा?+++ किन्तु यह सब उलाहना व्यर्थ है तुम आखिर मेरे बड़े ही हो, यदि मैं तुम्हारी भर्त्सना करूँ तो मैं केवल पाप की भागी बनूँगी। मैं कुलनारी, हूँ, विधिना का यही विधान है कि मैं पराधीन हूँ। मुझमें वह शक्ति नहीं कि अपनी शक्ति से अपनी इच्छा पूर्ण करूँ। दुर्दान्त अर्जुन ने मुझे पुत्रहीना कर दिया, मालूम होता है विधाता ने इस कौन्तेय को इस कारण पैदा किया कि वह लोगों के सुख का नाश करता फिरे। तुम पति मेरे प्रति दुर्भाग्य से वाम हो रहे हो। फिर मैं इस संसार में जीऊँ तो किस लिये और क्यों? आज यह विपुल जनसंख्यावाली पृथ्वी मेरे लिये निर्जन हो चुकी है। इस जले हुए ललाट पर विधिना ने जो लिखा है वह अब होकर के ही रहा।"

"हाय मेरा प्रवीर! क्या इसीलिये तुझे मैंने दस मास दस दिन तक कष्ट सहकर गर्भ में धारण किया?++ क्या इसी प्रकार मा का ऋण चुकाया जाता है? हे आँखें क्यों तुम बरस रही हो?

कौन तुम्हारे आँसुओं को पोछनेवाला है ? हे मन क्यों तू जलता है ? अरे मणिहीन फणी तेरा शिरोमणि तो पांडव के शर से खंड खंड हो चुका, अब बांबी के अन्दर मुँह छिपाकर रोना ही तेरे लिये रह गया है। जाओ महावाहु अपने मित्र पार्थ के साथ जाओ, यह अभागी तो अब महायात्राकर इस संसार से जाती है। मैं क्षत्रकुल-वाली हूँ और क्षत्रकुल वधू भी, कैसे मैं यह अपमान सह सकती हूँ। मैं तो जाकर जाह्नवी के जल में अपना प्राण दिये देती हूँ। देखूँ यदि कृतान्त के यहाँ जाकर मेरे शोक का अन्त हो। मैं हमेशा के लिये तुम्हारे चरणों से बिदा माँगती हूँ। जब तुम अपने प्रासाद में लौटोगे तो यदि तुम "जना कहाँ है ?" करके पुकारो तो प्रति-ध्वनि जवाब देगी "जना कहाँ है ?"

नवीन साहित्य में व्यक्तिस्वातंत्र्य

कहाँ वैयक्तिक स्वतंत्रतालवलेश शून्य वैष्णव-कविता और कहाँ माईकेल की यह पग-पग पर अपने लिये स्वतंत्र रास्ता निकालकर झूमती हुई चलनेवाली कविता। माइकेल ने अपने इन भावों को जिससे आत्मप्रकाश में कठिनता न हो अतुकान्त को अपनाया, किन्तु कृत्तिवास काशीरामदास तथा पदावली के पयार छन्द को अपनाया, किन्तु उसकी गति बदलकर उसमें नये जीवनप्रवाह का संचार किया। वह युग ही ऐसा था कि सभी क्षेत्र में नयेपन की गुंजाइश थी। आज बँगला इस मर्यादा को पहुँचा है कि उसमें सूक्ष्म से सूक्ष्म कविता तथा स्थूल से स्थूल विज्ञान लिखा जा सकता है, किन्तु मधुसूदन के युग में भाषा नये युग के प्रयोजन बल्कि कहना चाहिये नये युग के सतत वृद्धिशील प्रयोजन के अनुसार पिछड़ी हुई थी। मधुसूदन को इसलिये वीणा धारण करने के लिये वीणा की लकड़ी काटनी पड़ी, तार बनाने पड़े तब वीणा पर आलाप शुरू किया। मधुसूदन की भाषा दुरूह है, उसमें संस्कृत के तत्सम शब्द, बड़े-बड़े समास बहुत हैं, किन्तु "फिर भी" समालोचक मोहितलाल लिखते

हैं "माइकेल के शब्दों की दुरूहता ने बंगाली पाठकों को उतना नहीं भरमाया जितना रवीन्द्रनाथ की भाषा की अनभ्यस्त शैली ने लोगों को परेशान किया।"

कविता और छन्द

कविता में छन्द एक प्रमुख वस्तु है। अति-आधुनिक बँगला कविता में हमें ऐसी कविता का साक्षात्कार होगा जिसमें छन्द नहीं हैं, याने कोई छन्द दिखाई नहीं पड़ता, एक नाटकीय ढंग से पढ़ना भर रह गया है। इसको हम (*rhythmic prose*) कह सकते हैं, लेकिन ऐसा तो हम सभी अतुकान्त यहाँ तक कि तुकान्त कविता को कह सकते हैं। अस्तु।

छन्द साहित्य की एक कृत्रिम पद्धति

आज बहुत से लोग छन्द को साहित्य की एक कृत्रिम पद्धति समझते हैं। वे आज छन्द के बन्धन से मुक्त होकर स्वेच्छाविचरण करना चाहते हैं, किन्तु कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने कहा है यह बन्धन केवल बाहरी है। आन्तरिक रूप से यह मुक्त ही है। "शब्दों को उनके जड़धर्म से मुक्ति देने के लिये ही छन्द का तकाज़ा होता है। सितार का तार बँधा जरूर रहता है, किन्तु तभी तो उसमें से सुर मुक्त होकर बह सकता है। छन्द उसी प्रकार तार बँधा हुआ सितार है, शब्दों के आन्तरिक सुरलय को वह मुक्त कर देता है। छन्द धनुष के गुण की तरह है। उसके ज़रिये हृदय रूपी लक्ष्य को बेधकर ही मानता।" सुर जैसे हृदय पर एक रहस्यमय तरीके से अधिकार जमा लेता है, उसी प्रकार छन्द शब्दों में एक सुरूर पैदा कर देता है जो परिभाषा की पकड़ में नहीं आता। एक फ्रेञ्च समालोचक ने लिखा है छन्द का संगीत हमारी बुद्धिवृत्ति को थपकियाँ देकर सुला देता है, फिर उसके सामने एक स्वप्नलोक अवारित कर देता है, यही कविता की सफलता का रहस्य है।

बंगला के सरल छन्द

मधुसूदन ने इसलिये छन्द को तो नहीं त्यागा किन्तु अपनी प्रतिभा की विपुल दृष्टि से उसे अपने भावों के अनुरूप कर लिया। पदावली साहित्य के युग में, मधुसूदन के युग में और आज भी बंगला छन्द एक बहुत ही सरल वस्तु है। हिन्दी छन्दों की तरह बँगला छन्द को आयत्त करने के लिये किसी को पिंगल पढ़ने की या दीर्घ अभ्यास की जरूरत नहीं, यह भी एक कारण है कि बंगला में कविता की इतनी उन्नति हो सकी। प्राचीन बँगला में सच पूछा जाय तो पयार, त्रिपदी, चौपदी आदि चार ही पाँच छन्द थे, इनके मिश्रण से जो छन्द होते थे वे मिश्र छन्द कहलाते थे। अवश्य भारतचन्द्र ऐसे कवियों ने सफलतापूर्वक कुछ संस्कृत छन्द की भी बँगला में आमदनी की, किन्तु ये छन्द बँगला शब्दों की उच्चारण पद्धति के साथ सामंजस्य-हीन होने के कारण दूसरे कवियों ने उसे नहीं अपनाया। "त्रिपदी" दीर्घ त्रिपदी और चौपदी में यति इकरस होते थे, फिर पग-पग पर तुक मिलाना पड़ता था, इस कारण मधुसूदन को जो बँगला कविता उत्तराधिकार सूत्र में मिली वह भाव-गदगद और रीढ़शून्य थी। मधुसूदन ने पयार को ही लिया, किन्तु उसको नये तरीके से ढाल-कर उसमें नये संगीत की सृष्टि की। यह असाध्य साधन वे अपनी भाषा की ही बदौलत करने में समर्थ हुए। +

माइकेल और पयार

माइकेल ने इस पयार को ही महाकाव्य के सुर में बाँध दिया। इस प्रकार माइकेल ने केवल विचार-जगत में ही एक बिलकुल नया जगत नहीं पेश किया, बल्कि उस विचार के लिये उपयुक्त वाहन का भी निर्माण किया। भाषा और छन्द यदि भावों से आगे निकल

+देखो आधुनिक बँगला साहित्य, पृ: ११५

गये या पीछे रह गये तो कवि को सफलता नहीं मिलती, इसलिये अधिक या कम प्रत्येक कवि को अपनी भाषा तथा छन्द आदि तैयार करना पड़ता है। इसीको हम किसी कवि की शैली कहेंगे। मधुसूदन ने जैसे पौराणिक नामों को लेकर उनको बिलकुल अपौराणिक आधुनिक बना दिया, उसी प्रकार उन्होंने बँगला छन्दों में विशेषकर पयार को ग्रहण करते हुए उसमें ऐसे परिवर्तन कर दिये जो वैष्णव कवियों के लिये अकल्पनीय थे। पयार में चौदह अक्षर होते हैं। "उसके आठ पैर होते, किन्तु उसको कितने प्रकार से चलाया जा सकता है इसका प्रमाण माइकेल के 'मेघनादवध' काव्य में मिलता है। उस महाकाव्य की अवतारणा की प्रथम पंक्तियों को ही लीजिये। इन पंक्तियों में ही उन्होंने विभिन्न वजन का सुर अलापा है, किसी जगह पर भी पयार को उन्होंने प्रचलित यतिस्थान पर रुकने नहीं दिया। पहिली पंक्ति में ही वीरवाहु की वीरमर्यादा सुगंभीर होकर बज उठी—

सम्मुखसमरे पोड़ि वीर चूड़ामणि वीरवाहु(१)

फिर जैसे उनकी अकालमृत्यु का संवाद जैसे टूटी हुई रणपताका की तरह टूटे हुए छन्दों में टूट पड़ा

चलि जबे गेला यमपुरे अकाले(२)

फिर जैसे छन्द ने झुककर मंगलाचरण किया

कह हे देवी अमृतभाषिणी(३)

फिर इसके बाद असली बात जो सबसे महात्त्वपूर्ण है, परिणाम की सूचना की तरह जैसे आनेवाली आँधी के सुदीर्घ मेघगर्जन की तरह क्षितिज की एक ओर से दूसरी ओर तक प्रतिध्वनित होती है—

---

(१)वीर चूड़ामणि वीरवाहु सन्मुखसमर में खेत रहकर

(२)जब अकाल ही यमपुर चले गये

(३)तो बताओ हे देवी अमृतभाषिणी

कोन वीरवरे वरि सेनापति पदे
पाठाइलो रणे पुनः रक्तकुलनिधि
राघवारि(४) यह माइकेल का चमत्कार है।"(५)

अतुकान्त होने के कारण कवि को कहीं तुक खोजने के लिये कहीं अपने भावों को कुंठित नहीं करना पड़ा।

कवि विहारीलाल चक्रवर्ती

इस युग के दूसरे प्रतिभावान कवि का नाम जैसा पहिले ही बताया गया विहारीलाल चक्रवर्ती था। "मजे कीबात यह है कि कवीन्द्र रवीन्द्र के अतिरिक्त और भी बहुत से समसामयिक कवि उन्हें अपना काव्यगुरु करके मानने पर भी उनको माइकेल मधुसूदन के मुकाबले में बँगाल के बाहर ही में कम लोग जानते हैं ऐसा नहीं बल्कि बँगाल में भी वे कम प्रसिद्ध हैं। फिर भी बँगला साहित्य में विहारीलाल का स्थान माइकेल से कुछ दूर नहीं है, बल्कि बाद को चलकर विहारीलाल की विशेप काव्य-साधना ही बँगला साहित्य में अधिक रंग लाई। विहारीलाल की काव्यप्रेरणा मधुसूदन के मुकाबले में और भी सरल और स्वतःस्फूर्त थी, साथ ही बँगाली जाति के भावों के अनुकूल थी। इस दृष्टि से आधुनिक बँगला काव्य के इतिहास में विहारीलाल एक व्यक्ति नहीं बल्कि युग-प्रवर्तक थे।"+

विहारीलाल की कविता

विहारीलाल ने 'सारदामंगल, 'प्रेम प्रवाहिनी, 'वन्धुवियोग, 'निसर्ग सन्दर्शन,' 'बाउलविंशति' 'सङ्गीतशतक' आदि कई एक काव्यग्रन्थ लिखे, किन्तु आज बँगाली समाज में इनको पढ़नेवालों

(४) राघवारि रक्तकुलनिधि ने किस वीरवीवर को सेनापति पद में वरण कर भेजा

(५) देखिए सहजपत्र चेत्र१३२५ में रवीन्दनाथ का छन्द लेख

+ श्री मोहितलाल मजुमदार के आधार पर विहारीलाल मुख्यतः लिखा गया

की संख्या बहुत ही कम है। बात यह है विहारीलाल की प्रतिभा मुख्यत: *syric* थी, गीत गाते-गाते वे इतना विभोर हो जाते थे कि वे भूल ही जाते थे कि उनके सामने श्रोता हैं। उनकी उड़ान अत्यन्त *lubjectne* (आत्मपरायण) उड़ान है । उनके काव्यों में गम्भीरता और सकेन्द्रीयता जितनी हृदयस्पर्शी है, भाव की मूर्ति उतनी स्पष्ट नहीं है। इस कारण वे साहित्य में एक नवीन रीति के प्रवर्तक होते हुए भी साधारण कवितप्रेमी पाठक के प्रिय नहीं हो सके। मधुसूदन के मुकाबले में तो वे कम पढ़े ही जाते हैं, किन्तु नवीनचन्द्र और हेमचन्द्र से भी वे कम पढ़े जाते हैं यह प्रथम दृष्टि में आश्चर्यजनक होते हुए इसका कारण स्पष्ट है, और वह यह है कि नवीनचन्द्र और हेमचन्द्र चाहे कवि रूप में इनसे कितने ही निकृष्ट रहे हों, किन्तु उन्होंने पलाशी का युद्ध आदि ऐसा विषय लिया था जो कितना भी बिगड़ता तो उसकी एक हद थी।

बिहारीलाल की भाषा

विहारीलाल की भाषा एक विशेष भाषा है । समालोचक कवि मोहितलाल के अनुसार उनके भाव शिशु की तरह सरल हैं तो उनकी भाषा भी शिशु की तरह नग्न अकृत्रिम है। विहारीलाल की यह भाषा ही जैसे उनकी काव्यरचना की विशेष प्रतिभामयी भाषा है। विहारीलाल के काव्य सारदामंगल' को पढ़ने से हमें उनकी भाषा की कला (जिसको *unpremeditated art* कहेंगे) पग-पग पर ख़ूब देखने को मिलती है। कविवर कीट्स ने जिस प्रकार के कवि—स्वप्न को

—upon the night's starred face,

Huge cloudy symbols of a high romance

बतलाया है, उस प्रकार के रूप-रस की उत्कंठा उनमें नहीं थी। उनके काव्यों में विचार से बढ़कर भाव, कल्पना से बढ़कर प्रीति-विभोरता जो नहीं है उसकी उद्भावना से जो है उसीसे आनन्दलोकसृष्टि की साधना हम अधिक देखते हैं।

आत्मनिमग्न विहारीलाल

विहारीलाल की यह आत्मनिमग्नता कहीं इतनी अधिक हो जाती है कि वह पाठक के उपहास की वस्तु हो जाती है। समझ ही में नहीं आता कि इसमें कवितापन कहाँ है। अपने वाल्यबन्धु पूर्णचन्द्र की मृत्यु पर वे एक कविता लिख गये जिसमें वे मित्र की इसलिये प्रशंसा करते दिखाई देते हैं कि वे एक दिन गंगा नहा रहे थे, ऐसे समय में एक नाव डूब गई। उस नाव का मल्लाह बच गया किन्तु उसका कपड़ा बह गया। वह किनारे पर कम पानी में आकर थरथर काँपने लगा, किन्तु उसे हिम्मत न हुई कि किसी से कपड़ा माँगे। पूर्णचन्द्र ने उसे अपना कपड़ा दे दिया और खुद अँगोछा पहिनकर घर चले आये। इस घटना को कवि ने नमक-मिर्च न मिलाकर ऐसे ही लिख दिया जैसे मैंने उसका विवरण लिखा। कहना न होगा यह कोई कविता नहीं है, किन्तु इससे वही बात साबित होती है जो मैं पहिले लिख आया याने कवि विहारीलाल को अपने ही भावों की परवाह है, श्रोताओं की नहीं। सौभाग्य से इस तरह की आत्मकेन्द्रित कविता उनकी रचना में कम है। कुछ भी हो विहारीलाल की कविता इतनी सरल है कि हम सहज ही में कवि के हृदय की धड़कन को गिन सकते हैं।

विहारीलाल की 'हिमालय' कविता

हिमालय को कविवर विहारीलाल किस प्रकार चित्रित करते हैं देखने की चीज़ है, नीचे जो कविता उद्धृत की जायगी उसमें पाठक देखेंगे कि हिमालय कोई प्रस्तरस्तूप नहीं, बल्कि रक्तमांसस्पर्शयुक्त एक विराट शरीर है, जिसके हृदय की धड़कन की यह कविता मानों स्वरलिपि (*Notation*) है। हम इस कविता में साफ़ देख सकते हैं कि अब बँगला साहित्य में रवीन्द्रनाथ जैसी विभूति आने ही वाली है। विहारीलाल की कविता मानो उस आनेवाली महान प्रतिभा

का पेशखेमा है। हम जरा कान खड़ाकर सुनें तो हमें रवीन्द्रनाथ के आने की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ेगी। विहारीलाल लिखते है —

असीम नीरद नय
ओ-इ गिरि हिमालय
उथुले उठेछे जेनो अनन्त जलधि
व्येपे दिक दिगन्तर
तरंगिया घोरतर
साबिया गगनांगने जागे निरवधि

यह हिमालय पहाड़ कोई सीमाहीन बादल नहीं है, बल्कि जैसे अनन्त समुद्र उमड़कर खड़ा हो गया है, सब दिशाओं को बड़े जोरो के साथ व्याप्त तथा तरंगित करता हुआ मानों वह आकाश रूपी आँगन को डुबाता हुआ निरवधि रूप से जाग रहा है।

पदे पृथ्वी, शिरे व्योम,
तुच्छ तारा सूर्य, सोम,
नक्षत्र नखाग्रे जेनो गनिबारे पारे
समुखे सारादाम्वरा
छड़िये रयेछे धरा,
कटाक्षे करवन जेनो हेरिछे ताहारे।

चरणों पर उसकी वसुन्धरा है, सिर पर आकाश है; सूर्यचन्द्र फिर उसके लिये तुच्छ क्यों न हों, वह तो जैसे नखाग्र से नक्षत्रों को गिन सकता है। सामने सागराम्वरा धरा फैली हुई है, कभी-कभी वह कटाक्ष से उसे देख भर लेता है।

कतशत अभ्युदय
कतई विलय लय

चक्रेर ऊपरे जेनो घटे क्षणेक्षणे
हरहर हरहर
सुरनर थर
प्रलय-पिनाक-राब बाजे ना श्रवणे

सैकड़ों अभ्युत्थान और पतन उसकी आँखों के सामने हरेक क्षण होते रहते हैं। हरहर हरहर, सुरनर थरथर काँपते हैं, किन्तु प्रलय का पिनाक रव उसे सुनाई भी नहीं पड़ता।

झटिका दुरन्त मेये
बुके खेला करे धेये
धरित्री ग्रासिया सिन्धु लोटे पदतले।
ज्वलन्त अनल छबि
ध्वकध्वक ज्वले रवि
किरन-जलन-ज्वाला माला शोभे गले।

आँधी तो उसकी एक शरारती लड़की भर है, वह दौड़-दौड़ कर उसके सीने पर खेलती है, धरित्री सिन्धु को ग्रसकर उसके पैर पर लोटती है। जलती हुई महान् आग की तरह सूर्य धकधक जलता है, किरणों की जलती हुई माला से उसका कंठ सुशोभित है।

कालेर कराल हासि
दमके दामिनी राशि
कक्कड़ दन्ते दन्ते भीषण घर्षण
त्रिजगत त्राहि त्राहि
किछुई भ्रूक्षेप नाहि
के योगेन्द्र व्योमकेश योगे निमगन

काल की कराल हँसी की तरह बिजली कौंद जाती है, दाँत से

दाँत पीसकर काल मानों कड़कड़-कड़कड़ शब्द करता है, तीनों भुवन त्राहि त्राहि करते हैं, किन्तु उसे किसी बात की परवाह नहीं, हे योगनिमग्न व्योमकेश तुम भला कौन हो ?

मानों कवि ने इस हिमालय में भारतवर्ष को ही चित्रित कर दिया है, बाहरी प्रभाव के प्रति उदासीन, मुक्त, उदार, अपने में आप समाहित।

बिहारीलाल के युग के कुछ विशिष्ट कवियों की कविताओं का नमूना देकर हम इस दौर को समाप्त करेंगे।

कवि सुरेन्द्रनाथ मजुमदार

सुरेन्द्रनाथ मजुमदार नामक एक कवि इस युग में कहीं-कहीं पर बहुत अच्छी कविता लिख गये हैं। मुख्यतः इन्होंने अनुवाद ही किये हैं, किन्तु इनकी एक मौलिक कविता में कवि की वैयक्तिक स्वतंत्रता कितनी उग्र मालूम होती है

हे कवि-कल्पना माया सत्येर सोनालि छाया
काव्य-इन्द्रजाल-भानुमती,
सुखे तुमि यथा इच्छा थाको क्रीड़ावती।
चढ़िया पुष्पक-रथे
भ्रमो गिया छायापथे
कर इन्द्रचाप-विरचन,
किम्वा करो परीसने चन्द्रिका भोजन,
आमि ना करिवो देवी तव आवाहन।

हे कविकल्पना रूपी माया, सत्य की सुनहरी छाया, काव्य रूपी इन्द्रजाल की भानुमती, क्रीड़ाशीले तुम्हें जहाँ भी रहना हो सुख से रहो। पुष्पक विमान पर चढ़कर चाहे छायापथ में भ्रमण करो और इन्द्रधनुष बनाओ, या परियों के साथ जाकर चाँदनी में भोजन करो; किन्तु देवी मैं तुम्हारा आवाहन नहीं करने का--

विधातार ए संसारे यारे ना तुषिते पारे—
जे कविर महती कामना,
से कबि कोरिबे देवी तव उपासना।
तोमार मुकुर परे
हेरे से हरषभरे
छाया तार काया नाही जार—
ततो लोकातीत नय वासना आमार
लक्ष्य मम सामान्य ए सत्येर संसार।

विधाता का बनाया हुआ यह संसार जिसे तुष्ट नहीं कर सकता, जिस कवि की कामना इससे महान् है, वही देवी तुम्हारी उपासना करेगा। वह तुम्हारे दर्पण में आनन्द के साथ उस चीज़ की छाया देखकर ख़ुश होता है जिसका शरीर ही नहीं है? मेरी वासना इस प्रकार लोकातीत नहीं है, मेरा तो लक्ष्य मामूली यह सत्य का संसार है।

ऊपर जो कविता उद्धृत की गई उसको हम पाश्चात्य कवियों का अनुकरण कहकर उड़ा नहीं दे सकते क्योंकि उन्नीसवीं सदी में पाश्चात्य कवि भी बहुत अंश में चाँदनी भोजन करते थे। आजकल के उस भारतीय साहित्य के सम्बन्ध में जो आधुनिक दीखते हुए भी आधुनिक नहीं हैं ऊपर उद्धृत की हुई कविता एक अच्छी समालोचना है। यह भी देखने की बात है सुरेन्द्रनाथ ने अपनी कविता को (*Stanzas*) के रूप में लिखा है।

कविता में नारी की पूजा

हरेक युग की कविता में नारी की पूजा एक प्रधान चीज़ रही है। कविता की उत्पत्ति का फ्रायडीय सिद्धान्त को यह बात प्रतिपादित करती है। बँगला के प्राचीन साहित्य में राधा, यशोदा;

कौशल्या के रूप में नारी की पूजा बहुत हुई है, किन्तु उर्वशी के रूप में नारी की पूजा इसी युग की विशेषता है। हम रवीन्द्रसाहित्य की आलोचना के अवसर पर इस बात पर आयेंगे, किन्तु "उर्वशी" लिखे जाने के पहिले उर्वशी भाव से नारी पूजा की एक बानगी हमें इन्हीं सुरेन्द्रनाथ मजुमदार की महिला कविता में मिलती है।

वर्णिते ना चाइ ह्रद नदी सरोवर
सिन्धु शैल वन उपवन ;
निर्मल निर्झर, मरु बालुर सागर,
शीत-ग्रीष्म-वसन्त वर्तन।
हृदये जेगेछे तान,
पुलके आकुल प्राण
गावो गीत खुलि हृदि-द्वार—
महीयसी महिमा मोहिनी महिलार।

"मैं झील, नदी, तालाब, सिन्धु, पहाड़, वन, उपवन, निर्मल झरना, बालू के सागर मरुभूमि या शीत, ग्रीष्म या वसन्त ऋतु के परावर्तन का वर्णन नहीं करना चाहता। मेरे तो हृदय में तान जगा है, प्राण पुलकित हो रहा है, इसलिये मैं हृदय का द्वार खोलकर मोहिनी महिला की महीयसी महिमा गाऊँगा।"

आगे मूल न देकर बाकी कविता का अनुवाद ही दिया जाता है।

"मन की सुषमा का सविलाश विग्रह है, आत्मा के आनन्द की प्रतिमा है, कविता के ध्यान का जैसे साक्षात साकार है, माया की मुग्धमुखी मूर्ति है, हृदय के जितने काम्य हैं उन सबका संग्रह है। भला मैं रमणी के सम्बन्ध में आये हुए मेरे विचारों को कैसे समझाऊँ?" वह इस संसार रूपी फणी का मणि है, मंत्र है, महौषधि है।

इस कविता की कुछ पंक्तियाँ यों हैं—

एलोकेशे के एलो रूपसी
कोन वनफूल, कोन्, काननेर शशी

बालों को लटकाकर कौन यह रूपसी है, कौन-सा वन फूल है, किस कानन का शशी है।

रवीन्द्रनाथ की "उर्वशी" कविता में एक जगह ऐसे आता है—

वृन्तहीन पुष्प सम आपनाते आपनि विकशि
कबे तुमि फूटीले उर्वशी

ऐसा मालूम होता है रवीन्द्रनाथ की नारी पर लिखी हुई यह सर्वश्रेष्ठ कविता का संगीत सुरेन्द्र मजुमदार की ऊपर की पंक्तियों से मिलता है। अन्त में शी-शी (*she* ?) आने से कविता का रस जैसे बढ़ गया है।

इस युग में इतने कवि हुए हैं कि उनकी एक-एक पंक्ति भी दी जाय तो एक बड़ी भारी पुस्तक हो जाय। इसलिये केवल कुछ ही कविता देना संभव है। शिवनाथ शास्त्री की ख्याति मुख्यत: एक सुधारक के रूप में है, फिर भी उन्होंने कुछ कवितायें लिखी हैं, उनकी "गभीर निशीथे" नामक कविता पाठकों के सामने पेश की जाती है। ध्यानपूर्वक पढ़ने पर जिसे हम कविता में (रहस्यवाद) (*Mysticism*) कहेंगे वह इसमें एक अस्पष्ट रूप में मिलेगा।

गभीर निशीथ में

"कैसी गहरी रात है ? धरणी अन्धकार के सागर में मग्न है, चारों तरफ़ सुनसान है, पहरेवाला कुत्ता भूक रहा है, उसकी यह आवाज़ शहर के इस कोने से उस कोने तक जाती है। मानों उसकी प्रतिध्वनि को इमारतें गेंद की तरह उछाल रहीं हैं। यह कैसी भयंकर बात है ? अगाध समुद्र के नीचे एक छोटा-सा कीड़ा जैसे

उसके नीचे की घास में रहता है उसी तरह मैं अपने कमरे में अन्धकार सागर के गर्भ में डूबा हुआ हूँ। सब परिजन सोये हुए हैं, दिशायें कितनी चुपचाप हैं। रात के आकाश में मानों कोई अदृश्य प्रहरी मुझे ज़ोर से सन-सन फुफकार रहा है। विश्व चौंका हुआ दृष्टिगोचर होता है। इस अगाध समुद्र के नीचे पड़ा-पड़ा मैं पुकार उठता हूँ—'कौन हूँ मैं ? कौन हूँ मैं ओ रजनी ! करोड़ों कीड़े-मकोड़े, गांव, प्रान्तों को लेकर यह जगत् घूम रहा है, अच्छा पहिले इस धरित्री से ही पूछा जाय—धरित्री तू कौन है ? इस विश्व में तो तू एक धूल की कण है।—फिर मैं, मैं कहाँ हूँ, और कल्पने, भारती स्मृति, मेरे प्यारे धन तुम लोग कौन हो ? मैं कवि हूँ यह मेरा अहङ्कार है, मैं कहाँ हूँ। ओह, मैं तो इस विश्व में विलीन हो जाता हूँ.........

देवेन्द्रनाथ सेन की कविता

कवि देवेन्द्रनाथ सेन तथा अक्षय कुमार बड़ाल रवीन्द्रनाथ के समसामयिक हैं अर्थात् थे, किन्तु फिर भी कई दृष्टि से उनकी कविता रवीन्द्रयुग के पहिले की कविताओं के साथ अध्ययनयोग्य हैं, इसलिये हम इस दौर में ही उनकी कविता का नमूना देकर इस अध्याय को समाप्त करेंगे। देवेन्द्रनाथ क्या हैं यह उन्हीं के अपने मुंह से सुनिये—

चिरदिन चिरदिन रूपेर पूजारी आमि
रूपेर पूजारी।
सारासन्ध्या सारानिशि रूपवृन्दावने वसि
हिन्दोलाय दोले नारी आनन्दे नेहारि।
अधरे रङ्गेर हास विद्युतेर परकाश
केशेर तरंगे नाचे नागेर कुमारी

वासन्ती ओढ़ना साजे प्रकृतिराधिका नाचे
चरणे घुङ्गुर, बाजे आनन्दे झङ्कारि
नगना दोलना कोले मगना राधिका दोले
कविचित्ते कल्पनार अलका उधारि'
आमि से अमृतविष पान करि' अहर्निश
संसारेर व्रजवने विपिनविहारी।

"हमेशा से हमेशा से मैं रूप का पुजारी रहा हूँ, रूप का पुजारी। सारी सन्ध्या और सारी रात रूप वृन्दावन के हिंडोरे में झलुए का मजा लेती रहती है। मैं इसको आनन्द के साथ देखता रहता हूँ। अधरों पर रँगीली हँसी है, मानों विद्युत का प्रकाश हुआ है, बालों की लहरों में मानों नागकुमारी नाच रही है। ओढ़ना वासन्ती रंग का है, प्रकृति रूपी राधा नाच रही है, कविचित्त में कल्पना का उद्रेक होता है। इस अमृत-विष को मैं दिन-रात पीता रहता हूँ, इस प्रकार मैं संसार के व्रजवन में विपिनविहारी हूँ।"

एक दूसरी कविता

देवेन्द्रनाथ सेन की रचनायें इस अमिट रूपपिपासा से ओत-प्रोत हैं, 'लखनऊ का शरीफ़ा' नामक कविता लीजिये। मामूली फलों को लेकर कविकल्पना किस प्रकार अबीरगुलाल की पिचकारी भरती हुई अठखेलियाँ करती चलती है—

"मैं अनार नहीं चाहता जिसका रंग अभिमान से निष्ठुर व्रज-सुन्दरियों के होठों की लालिमा से मिलता है। मैं सेव भी नहीं चाहता, जो विरहविधुरा जानकी के मुख-रुचि की पांडुरता लिये हुए है। ज़रा से रस से भरा हुआ अंगूर, जो नई बहू के लज्जा से दिये हुए चुम्बन की तरह है, भी मैं नहीं चाहता। मैं गन्ने का स्वाद भी नहीं चाहता जो प्रौढ़ दम्पतियों के प्रगाढ़ प्रेमालाप की तरह कठिन में मधुर है। मुझे तो बस वह ऊँची पैदाइश का शरीफ़ा दो, जो लखनऊ के नवाबों के उद्यान में रस से लबरेज लटकता रहता है,

किसी नवाबज़ादी ने आकर छू भर दिया और फट पड़ा। अहा यह मृत्यु भी कैसी विचित्र है, किसी रसिका की रसना के ऊपर मरकर रह जाना।"

आँखिर मिलन

"आँखिर मिलन" नामक कविता लीजिये—

आँखिर मिलन ओ जे—आँखिर मिलन।
लोके ना बुझिलो किछु लोके ना जानिलो किछु
दम्पतिर हलो तबुशत आलापन
हलो मन-जानाजानि हलो मन-टानटानि
आशाय चिकन हासि मनेर रोदन;
विजयार कोलाकुलि आँधारे श्यामार बुलि
प्रेमेर विरह-क्षते चन्दन लेपन
ओई आँखिर मिलन।

"यह तो आँखों का मिलना है आँखों का मिलना, न लोगों ने कुछ जाना, न लोनों ने कुछ कहा, फिर भी मियाँ और बीबी में सैकड़ों बातें हो गईं। एक ने दूसरे के मन को जान लिया, एक ने दूसरे को खींच लिया, आशा की चिकनी हँसी हो गई, या अभिमान का रोदन हुआ। दशहरे का मिलना हो गया, अँधेरे में जैसे श्यामा बोल गई, प्रेम और विरह के घाव पर चन्दन का लेप हो गया। बात यह है यह आँखों का मिलना था।"

अक्षयकुमार बड़ाल का 'आह्वान'

अब हम अक्षयकुमार बड़ाल की आह्वान नामक एक कविता का अनुवाद देकर इस दौर को समाप्त करते हैं। इस कविता में प्रकृति के साथ कवि का कितना निकट सम्बन्ध है, फिर उस सम्बन्ध को किस प्रकार दार्शनिकता में अनुवाद किया गया। आधुनिक कविता केवल उपमा, उत्प्रेक्षा की अनवरत घनघटा नहीं है, यदि उसमें दार्शनिकता

नहीं है, जीवन की सैकड़ों दुर्दान्त पहेलियों पर एक झलक रोशनी नहीं है, जीवन का स्पन्दन नहीं है तो वह कविता ही नहीं है। कविता बड़ी है इसलिये केवल हम उसका अनुवाद ही पाठक के सामने पेश करेंगे—

"देखो प्रिया इस तरु-लता-पुष्प से भरी हुई तथा गिरि नदी सागर से समन्वित पृथिवी को, यह नग्न देह से तथा मुक्त प्राण से आकाश की ओर ताक रही है, न इसमें कोई लज्जा है न कोई छलना ही। फिर देखो उस महाकाश को जो मेघों की राशि के साथ रोशनी तथा अन्धकार लेकर पृथिवी के हृदय पर पड़ा है, न उसे घृणा है न अहंकार। ऊपर तो महाशून्य है और पैरों के नीचे भूमि है, बीच में तुम और मैं हूँ। देह है, भूख भी है, हृदय है और हम सुधा की तलाश कर रहे हैं। होना तो मृत्यु है, लेकिन हम अमरता की चाह करते हैं। दुःख है, किन्तु उससे बचत स्वरूप भ्रान्ति है; सुख है किन्तु उसमें श्रान्ति आ जाती है; त्याग है तो संग्रह भी है। जीवन क्या है आँधी में सागर की तरह आमरण उठना गिरना, मैं पूछता हूँ क्या तुम इसको निभा सकोगी? मेरे हाथों में हाथ रखकर क्या तुम मुझे समझ रही हो? क्या तुम मेरे मन प्राण सब की थाह पा रही हो। यह न तो मिट्टी ही है न शून्य ही है, पाप भी नहीं है पुण्य भी नहीं है, यह तो आत्मा से आत्मा को अनुभव करना है।"

"क्या तुम समझ रही हो कि इसमें कितना आनन्द है? कितना जन्म-मृत्यु, स्वर्ग-मर्त्य के द्वारा मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ। चित्र में, शिल्प में, गान में, मैं तुम्हारा ही ध्यान करता रहता हूँ। देखती नहीं हो हरेक पाषाण पर तुम्हारी रेखा है, तुम्हारे प्रणय का लेखा है, मर जड़ में तुम्हारी अमर महिमा है।"

"प्रेम का सुधापात्र लेकर आओ मेरी देवी, आओ मेरी दासी आओ मेरी सखी।"

२

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ, और उनका दान

उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ केवल बँगला साहित्य के एक व्यक्तित्व नहीं बल्कि एक युग हैं, अपनी प्रतिभा की विपुलता, विविधता तथा भास्वरता के द्वारा एक शताब्दी की दो-तिहाई से वे बँगला साहित्य आकाश में जाज्वल्यमान हैं। उनकी प्रचंड दीप्ति के सामने पूर्ववर्ती साहित्यिक तथा कविगण टिमटिमाते-बुझते मालूम होते हैं, समसामयिकगणों की तो हालत जुगनुओं की तरह हो रही है, कभी मालूम होता है इस अनन्त आकाश में केवल रवीन्द्रनाथ ही हैं, कभी मालूम होता है साथ में वे भी हैं। कवीन्द्र रवीन्द्र केवल बँगला के कवि ही नहीं, नाटककार, औपन्यासिक, दार्शनिक, चित्रकार, समालोचक, राष्ट्रीय लेखक, भाषातात्विक, वैयाकरणिक, अभिनेता सभी हैं। कलामय अभिव्यक्ति का शायद ही कोई विभाग बचा हो जिसमें उन्होंने सफलता के साथ हाथ न लगाया हो। उनकी प्रतिभा जिस दिशा में भी गई उसी दिशा में नवीन पथ काटकर फूलों की फ़सल खिलाकर रख दिया। कहने को कहा जाता है विहारीलाल उनके काव्य गुरु थे। बात यह है इस अभागे देश में कान फूँकनेवाला न हो तो कोई सिद्ध नहीं होता। वे स्वयं भी इस बात को प्रतिभा के ही योग्य उदारता के साथ मानते हैं, किन्तु सच बात तो यह है कि एक छत्ते में कहाँ-कहाँ का शहद आकर एक सामंजस्यपूर्ण मिठास में परिणत हो गया है, यह मधुमक्खी स्वयं भी नहीं कह सकती।

वे केवल माइकेल की तरह मधुकर नहीं

फिर कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ का काम केवल दूसरे फूलों के शहद

लाकर सामंजस्यपूर्ण रूप से एक छत्ते में इकट्ठा कर देना ही नहीं था, बँगला काव्य साहित्य में यदि इस कार्य को किसी बड़े कवि ने किया है तो वे माइकेल हैं न कि रवीन्द्रनाथ। माइकेल ने लिखा है "मैं ऐसा मधुचक्र (छत्ता) बनाऊँगा, जिस पर वंगवासी गौरव करेंगे।" उन्होंने वाक़ई एक छत्ता बनाया स्मरण रहे इस काव्य मधुचक्र का निर्माण कोई मामूली काम न था, अंग्रेज़ कवि मिल्टन ने भी ऐसा ही किया था। *Paradise Lost* मिल्टन की सब से बड़ी तथा सुन्दर साहित्यिक कृति है। १७२७ में प्रसिद्ध फ्रेञ्च समालोचक वालटेयर ने ही पहिले-पहल बतलाया कि *Giovanni Battista Andreini* के *Adamo* नामक एक पौराणिक नाटक को (१६३८-३६) देखकर ही मिल्टन ने *Paradise Lost* महाकाव्य की परिकल्पना की। विलियम लौडर (*William Lauder*) नामक एक लेखक ने तो खुल्लमखुल्ला *Inquiry into the origin of Paradise Lost* में मिल्टन को चोरी का दोषी बतलाकर सनसनी पैदा कर दी। एक उच्च कवि *Joost van den Vondel* की एक रचना '*Lucifer*' से भी इस मिल्टनीय महाकाव्य का सम्बन्ध बतलाया गया। यह तो केवल दो-एक बातें हुई, इसी प्रकार इस महाकाव्य के सम्बन्ध में सैकड़ों बातें खोजनेवालों ने खोजीं। फिर भी अंग्रेज़ी साहित्य में मिल्टन एक महाकवि ही माने गये, क्योंकि उन्होंने अगर कहीं से कुछ लिया तो उसको इतना परिवर्तित (*transform*) कर दिया कि उसकी आत्मा तक बदल गई। यह साहित्य का एक बहुत ही टेढ़ा प्रश्न है कि दूसरों के भाव कहाँ तक अपनाये जा सकते हैं, इस पर स्वयं मिल्टन का ही मत सुन लिया जाय। उन्होंने लिखा है *Such kind of borrowing as this if it be not bettered by the borrower, among good authors is accounted Plagiary. +++ It is not hard for any man who hath a Bible in his hands to borrow good words and holy sayings in abundance, but to*

make them his own work of grace only from above.

"इस प्रकार का भाव-ग्रहण जिसमें ग्रहण के बाद भाव सुन्दर-तर नहीं हो जाते अच्छे साहित्यिकों की दृष्टि में चोरी कहलाती है। +++ किसी भी व्यक्ति के लिये यह आसान है कि हाथ में बाइबल लेकर सुभाषित या पवित्र कहावतें अधिक से अधिक कह डाले, किन्तु उनको अपनी बना लेना केवल ईश्वर-कृपा से ही संभव है।"

माइकेल के सामने मिल्टन से कहीं व्यापक तथा विविधतर साहित्य खुले हुए थे। संस्कृत साहित्य का काव्यभाग किसीभी समृद्ध भाषा से कम पीछे नहीं था, माइकेल के सामने वे सब साहित्य खुले हुए थे जो मिल्टन के सामने खुले थे, इसके अलावा संस्कृत का विराट काव्य-साहित्य खुला था। याद रहे गेटे संस्कृत की शकुंतला पर सबसे ज्यादा मुग्ध हुए थे, यद्यपि उनके सामने सब विश्व साहित्य था।

बंकिम और रवीन्द्रनाथ

रवीन्द्रनाथ माइकेल नहीं थे, फिर रवीन्द्रनाथ को यदि केवल कहा जाय कि वे प्राच्य और पाश्चात्य साहित्य के समन्वयकर्त्ता हैं, तो यह भी गलती होगी। यह बात जरूर है कि प्राच्य और पाश्चात्य में जो कुछ भी उत्कृष्ट है वह रवीन्द्रनाथ में आकर एकत्र हुए किन्तु प्राच्य पाश्चात्य का यह मिलन बहुत से और व्यक्तियों में हुआ, किन्तु वे रवीन्द्रनाथ क्या नीम-रवीन्द्रनाथ भी नहीं हुए। बँगला साहित्य में ही बंकिमचन्द्र को लिया जाय, बंकिमचन्द्र बहुत बड़े साहित्यिक थे, रवीन्द्रनाथ के पहिले बँगला साहित्य के नेता, पुरोधा, ऋत्विक वही थे। उनकी प्रतिभा से ही बँगला साहित्य को आभिजात्य की मर्यादा प्राप्त हुई थी, किन्तु फिर भी वे रवीन्द्रनाथ नहीं थे। रवीन्द्रनाथ केवल बँगला साहित्य के ही एक युग के प्रवर्तक तथा पुरोधा हैं यह बात नहीं, विश्वसाहित्य में उनका दान एक अभिनव प्रकार का है। हमारे हिन्दी साहित्य में रवीन्द्रनाथ के प्रभाव का परिमाण कम नहीं

है। ऐसे ही सभी भारतीय साहित्य में एक नये युग का प्रवर्तन रवीन्द्र-नाथ से हुआ। केवल यही नहीं यूरोपीय साहित्यों में रवीन्द्रनाथ का प्रभाव बहुत से कवियों में स्पष्ट है, इसको बहुत से यूरोपीय समालोचकों ने भी माना है।

रहस्यवादी कविता मुख्य दान नहीं

इस स्थान पर हम विशेषकर कवि रवीन्द्रनाथ से ही सम्बन्ध रखते हैं, किन्तु यह पहिले ही बतलाया गया है कि वे एक युगान्त-रकारी गद्यकार भी हैं। मजे की बात यह है कि यूरोप में रवीन्द्रनाथ की ख्याति मुख्यतः एक रहस्यवादी कवि के रूप में है, किन्तु उनकी अधिकांश कविता और कुछ भी हो *mystical* या रहस्यवादी नहीं है। 'कथा ओ काहिनी' 'बलाका' आदि उनकी कई सर्वोत्कृष्ट रचनायों का रहस्यवाद से कोई सम्बन्ध नहीं है। वे रचनायें तो मध्याह्न-सूर्य की तरह स्पष्ट हैं। उनमें कोई रहस्य नहीं। गद्य में तो रवीन्द्रनाथ शायद ही कहीं रहस्यवादी रूप में आते हैं, 'अचलायतन' 'गोरा, 'घरे बाइरे' किसी की भी न तो बनावट और न उद्देश्य ही रहस्यवादी है। बल्कि जिस ज़माने में यह कृतियाँ पहिले प्रकाशित की गई, उस समय कुछ लोगों ने यही शिकायत की कि इनमें प्रचार कार्य बहुत ज्यादा है। समग्र रवीन्द्र-नाथ को विश्लेषण करने पर देखा जायगा कि सब बातें कहने के बाद नेति-नेति कहते-कहते वे कलाकार भर रह जाते हैं।

"रवीन्द्रनाथ की काव्य-प्रतिभा मुख्यतः गानधर्मी (*lyrical*) है। यह बँगाली काव्य प्रतिभा की विशेषता है, किन्तु उसके मूल में कल्पना की जो शैली है वह भारतीय साहित्य तथा काव्य-पन्था के अनुरूप न होने पर भी वह भारतीय साधना के आदर्श से अनु-प्राणित है। रवीन्द्रनाथ की तरह विशुद्ध भारतीय मानस-प्रकृति बंकिमचन्द्र की भी नहीं है, बल्कि उस दृष्टि से देखा जाय तो बंकिमचन्द्र भारत से कहीं बढ़कर यूरोप के मानसपुत्र हैं। रवीन्द्र-

काव्यों में जो बात दिखाई पड़ती है उसमें भारतीय तत्त्वचिन्ता की प्रेरणा का एक बड़ा भाग है। भारतीय भावसाधना की जो विशेषता रही है वह यह है कि उसने हमेशा समस्त जगत् को एक रस-चेतना में अपने अन्दर कर लिया है, वह हमेशा भाव को लेकर तृप्त रही है। रूप की अरूप साधना ही इस प्रतिभा की विशेषता थी। +++रूप में भाव को प्रत्यक्ष करना या रूप की भाषा में इसे प्रकाश करना कवि का काम हो सकता है यह इस भावुकता-सर्वस्व जाति ने कभी सोचा भी नहीं था।"+

ऊपर की विश्लेषणपद्धति को यदि हम सच मानें तो कवित्व की दो मुख्य धारायें होतीं हैं, एक रूप की भावसाधना, दूसरी भाव की रूप साधना। मैं समझता हूं मोहितलाल ने ऐसा लिखकर कविता के साथ अन्याय किया है, क्योंकि भाव और रूप (*Idea and form*) के अलावा भी कवि का मन एक तीसरी चीज़ है जिसको हम भूल नहीं सकते। श्रेणीविभाग के खब्त में हम यह भूल नहीं सकते कि प्रत्येक कवि का हृदय एक विभिन्न चीज़ है। हाँ हम चाहें तो कवि हृदयों को भी श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं, किन्तु फिर भी एक-एक कवि स्वयं ही एक एक श्रेणी है। मैं पहिले ही लिख चुका हूँ कि 'कथा ओ काहिनी' 'वलाका' 'गीतांजलि' में हम रवीन्द्र की कवि-प्रतिभा का विभिन्न रूप देखते हैं, हाँ हम चाहें तो इन सब विशेष कवि-प्रतिभा को एक श्रेणी में ले जा सकते है, किन्तु उस हालत में हमारी श्रेणी बहुत व्यायक श्रेणी होगी। शायद हमें कवि कहकर के ही सन्तोष करना पड़े। रवीन्द्रनाथ की एक बहुत ही प्रसिद्ध कविता उर्वशी है, किन्तु इस कविता में कुछ भी रहस्य (*mysticism*) नहीं है। रवीन्द्रनाथ को अंग्रेजी 'गीतांजलि' पर नोबुल पुरस्कार मिला, इसी पर वे *mystic* कहलाये, किन्तु मैं इस बात को गंभीरता के साथ चुनौती देता हूँ की वह केवल एक रहस्यवादी कवि

+देखो आधुनिक बाँगला साहित्य पृ—१७१

हैं। रवीन्द्रनाथ के गीतों का अक्सर झुकाव इसी ओर है, किन्तु गीतों को छोड़ दिया जाय तो भी उनकी काव्य रचना विराट है। रवीन्द्रनाथ ने अपनी *mystic* रचनाओं को ही विश्वसाहित्य के दरबार में पहिले-पहल अंग्रेज़ी अनुवाद में पेश किया यह कोई आकस्मिक बात नहीं थी। मालूम होता है वे जानते थे कि यह एक नई धारा है जिसकी यूरोप के विद्वानों में क़द्र होगी, इसलिये उन्होंने खास करके इसी चीज़ को विश्व के सामने पेश किया। किन्तु इससे यह नीचोड़ निकालना कि रवीन्द्रनाथ रहस्यवादी ही हैं गलत है। हाँ कविता-जगत में रहस्यवाद का जो रूप उन्होंने पेश किया है वह बिलकुल नवीन है और कला के जगत में वह उतना ही नया है जितना विज्ञान जगत में *Roman effect* या रेडियम है।

उनके रहस्यवाद का विश्लेषण

फिर रवीन्द्रनाथ जहाँ रहस्यवादी हैं वहाँ भी वे निरे रहस्यवादी इस अर्थ में नहीं है कि रूप से भाव में चले जाकर रह जाते हैं, इस माने में तो विहारीलाल उनसे अधिक रहस्यवादी जान पड़ेंगे क्योंकि वे रूप से भाव में गये, और वहीं जाकर बैठ रहे। इससे विपरीत हम रवीन्द्रनाथ को 'भाव से रूप में तथा रूप से भाव में अनवरत आवागमन' करते देखते हैं। रवीन्द्रनाथ के रहस्यवाद की यही विशेषता मालूम देती है। रवीन्द्रनाथ की यह भाव साधना ऐसी है कि उसमें भारतीय अध्यात्मवाद को एक नवीन भोगवाद को समर्थन करने के लिये विवश किया गया है। रवीन्द्र-साहित्य में मनुष्य जीवन को एक महिमा प्राप्त हुई, जो प्राचीन साहित्य में कहीं नहीं थी। हमारे प्राचीन साहित्य में देवताओं के ज़रिये से मानव को देखने की प्रथा थी, स्वर्ग के देवताओं की नरलीला ही एक शब्द में सारे प्राचीन साहित्य का विषय है, किन्तु रवीन्द्रनाथ के साहित्य में हम मनुष्य के माध्यम से देवता को देखते है।

रवीन्द्र-प्रतिभा को एक वाक्या में परिभाषा करने की चेष्टा करते हुए कवि मोहितलाल मजुमदार ने लिखा है "रवीन्द्रनाथ की कल्पना-शक्ति के मूल में अन्तर और बाहर, भाव और वस्तु, विचार और अनुभूति की एक सामंजस्यमूलक गीतिप्रवणता है। इसी से उनके मन की मुक्ति है। इस मुक्ति के आनन्द में उनकी कल्पना सभी विरोध तथा सभी संस्कारों को पार कर एक ऐसी रसभूति में अधिष्ठान करती है जहाँ जीवन का सब असामंजस्य तथा वास्तविकता की सब विषमतायें कवि के प्राण में भावैक-परिणाम रागिणी में समाहित होती है।" मुझे फिर कहना पड़ा नेति। रवीन्द्रनाथ एक नाम होने पर भी इस नाम के अन्दर बीस विभिन्न कवि मौजूद हैं, रवीन्द्रनाथ ने अपनी काव्य-लक्ष्मी को जो 'जगतेर माझे कतो विचित्र तुमि हे, तुमि विचित्र रूपिणी' कहकर वन्दना की है, असल में यह अक्षरश: सत्य है। सचमुच कवि रवीन्द्रनाथ विचित्र हैं, और पाठकों के प्राण में विचित्र रूपों से आते हैं। हम आगे उनके कुछ रूपों पर इस अध्याय में रोशनी डालेंगे।

भाषा पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव

बँगला भाषा को रवीन्द्र ने जो कुछ दिया है उसकी तूलना नहीं है। उनकी प्रतिभा के वरद स्पर्श से बँगला भाषा को जो संगीत और नमनीयता प्राप्त हुई वह अतुलनीय है। बाद को बँगला को शायद और रवीन्द्रनाथ के समान प्रतिभाशाली पैदा करने का गौरव प्राप्त हो, किन्तु बँगला भाषा को रवीन्द्रनाथ जिस प्रकार बदल गये, उस बदलने-बनाने का गौरव फिर किसी को नहीं मिलेगा। आज बँगला में रवीन्द्रनाथ के पैदा होने का फल यह हुआ है कि इस भाषा में वैज्ञानिक भी लिखता है तो उसकी भाषा में कविता का पुट होता है।

रवीन्द्रनाथ बँगला में अकेले

भाषा की दृष्टि से रवीन्द्रनाथ का प्रभाव इस प्रकार सर्वव्यापी

होने पर भी, रवीन्द्र-धारा के बहुत ही कम सफल अनुयायी बँगला भाषा में पैदा हुए हैं। इसके बहुत से कारण बताये गये हैं, किन्तु मैं समझता हूं इस का एक प्रधान कारण यह भी है कि रवीन्द्रनाथ ने स्वयं ही अपनी शैली की सारी संभावनाओं को अपनी सुदीर्घ साहित्यिक आयु में खतम कर डाला, दूसरा कारण यह है कि सारे रवीन्द्र-साहित्य का मूल रवीन्द्रनाथ के विपुल व्यक्तित्व में था, उस से चारो तरफ के समाज से उतना ही सम्बन्ध था जितना एक तार से झूलते हुए टब में रोपे हुए पेड़ का ज़मीन के साथ होता है। महर्षि देवेन्द्रनाथ के पुत्र रवीन्द्रनाथ में प्राच्य और पाश्चात्य की सब से अच्छी बातें थी। रवीन्द्रनाथ लड़कपन से ही स्कूल से फ़रार रहे, किन्तु उन्होंने इन्गलैण्ड में जाकर अंग्रेज़ी का अध्ययन किया देश में भारतीय साहित्य को अध्ययन किया। रवीन्द्रनाथ का व्यक्तित्व ज़रूर चारों तरफ के भारतीय समाज की ही उपज है, किन्तु यदि जन-साधारण की दृष्टि से देखा जाय तो उससे उनका ऊपर बताये गये टब में कैद पौधे की तरह कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। हाँ एक बात में रवीन्द्रनाथ का सम्बन्ध जनता से बहुत क़रीब है, वह यह कि उनकी सांगीतिक आत्मा बिलकुल बँगाल की जनता की सांगीतिक आत्मा के साथ अभिन्न है। जर्मन कवि गेटे की तरह जनता के संगीत (*folk music*) से रवीन्द्रनाथ ने अनुप्रेरणा ली है, यह एक कारण है कि रवीन्द्रनाथ के काव्य में एक मादक आकर्षण है जिससे बचना मुश्किल है।

रवीन्द्रनाथ मध्यम श्रेणी के कवि

यह सब कुछ कह चुकने पर भी रवीन्द्रनाथ का गद्य तथा पद्य मध्यम श्रेणी का साहित्य है। कहा जाता है हमारे देश में केवल इसी श्रेणी का साहित्य हो सकता था, क्योंकि जिसको जनता कहते हैं उसका अस्तित्व इतना निम्नकोटी का है, क़रीब क़रीब पाशविक है कि वह साहित्य का विषय ही नहीं हो सकता। ऐसा जो लोग

कहते हैं वे कहते हैं जिन लोगों में न अभिसार है न विरह की तड़प, न *courtship* है, न प्रेमभिक्षा है, बस एक तरह से जबर्दस्ती कामपिपासा शान्त करना भर है उनमें प्रेम की कविता क्या हो सकती है ? यह एक बहुत ही टेढ़ा प्रश्न है, मौलिक कारणों पर बिना गये इन पर कुछ फ़ैसला नहीं हो सकता, फिर भी साहित्यिक ढंग पर ही मैं एक बात कहना चाहता हूँ।

रवीन्द्र के ताजमहल की समालोचना

वह यह कि कवीन्द्र ने ताजमहल पर एक सुन्दर कविता लिखा है, इसमें इस ऐतिहासिक इमारत को एक विरही के प्रेम-अर्ध्य के रूप में नमालूम कितने तरीक़ों से देखा, समझा, दिखलाया गया है। यदि कोई मान भी ले कि यह एक सम्राट का अपनी प्रियतमा के प्रति प्रेम-अर्ध्य है, या उसके आँसूओं का प्रस्तरीभूत रूप है इत्यादि, फिर भी यह कैसे कहा जा सकता है कि एक ग़रीब स्त्री जो अपने स्वर्गगत पति की मिट्टी की क़ब्र पर जाकर रोज़ शाम को बिलानागा एक छोटा सा दीया जला आती है, और जाकर चार आँसू रो आती है, जिनसे सींचे जाकर एक गुच्छा दूब हरी बनी रहती है, उसका वह छोटा सा मिट्टी का दीया जो शायद उस स्त्री के पीठ फेरते ही बुझ जायगा, या वह घास का गुच्छा किस भाँति उस ताजमहल से निकृष्ट है ? क्या प्रेम के राज्य में इस सिक्के का दाम उस सिक्के से कम है, क्या प्रेम के राज्य में भी रुपयों से चीज़ें छोटी बड़ी होती हैं ? इस पर यह कहा जा सकता है कि मिट्टी का दीया कला की वस्तु नहीं, किन्तु ताजमहल है; किन्तु इससे साफ हो जायगा कि ताजमहल की भावुकतापूर्ण व्याख्या (जो कवीन्द्र की ताजमहल नामक कविता का विषय है) से ताजमहल के बड़प्पन का कोई सम्बन्ध नहीं है। इस व्याख्या का खोखलापन इस बात से और भी ज़ाहिर हो जाता है कि मुमताज के अलावा

शाहजहाँ की और भी प्रियायें थीं ! इस बात के मालूम होने के बाद ताजमहल प्रेम के मीनार (*monument of love*) के बजाय शायद गर्व का मीनार जँचे।

भाषा पर अमिट प्रभाव

ऊपर जो कुछ कहा गया उससे शायद रवीन्द्रनाथ के साथ कुछ अन्याय हो इसलिये यह कह देना आवश्यक है कि दुनिया के १० फी सदी साहित्य के विरुद्ध यह समालोचना की जा सकती है। ज़माना बदल रहा है, भविष्य के कवियों की वीणायें दूसरे सुर में बँजेंगी इसमें सन्देह नहीं, किन्तु बँगला साहित्य में कुछ भी हो, उसके आदर्शों में कितनी ही क्रान्ति हो, फिर भी भाषा के रूप में रवीन्द्रनाथ बँगला भाषा को जो सौन्दर्य नमनीयता और रूप दे गये उसके ऋण से उऋण कम से कम कोई बँगला भाषी नहीं हो सकता।

इस अध्याय में हम पहिले भी कह चुके हैं और फिर भी कहते हैं कि रवीन्द्रनाथ केवल एक रहस्यवादी कवि ही नहीं जैसा कि यूरोप में लोग कहते हैं और समझते हैं, और भारतवर्ष में उसकी देखादेखी लोग कहते रहे हैं। मैंने यह भी बतलाया इस ग़लती की उत्पत्ति अंग्रेज़ी गीतांजलि से हुई। अंग्रेज़ी गीतांजलि को पढ़कर लोगों ने कहा रवीन्द्रनाथ रहस्यवादी कवि हैं, लोग इस भूल को बारबार कहते गये बस यह एक सत्य ही हो गया। रवीन्द्रनाथ ने जो और हज़ारों कवितायें लिखी थीं जिनसे रहस्यवाद से कोई सम्बन्ध नहीं थे, जो केवल सौन्दर्य की एक-एक लड़ियाँ थीं, उनको लोग भूल गये, और रवीन्द्रनाथ एक रहस्यवादी कवि ही हो गये। मुझे आश्चर्य है कि रवीन्द्र-काव्य के बँगाली समालोचकों तक ने इस अजीब बात को कम लोगों में आविष्कार किया और वे इस भूल के प्रवाम में बहते चले गये। अंग्रेज़ी में ही *Golden boat*

(सोनार तरी) नाम से रवीन्द्रनाथ की कविताओं का एक अनुवाद निकला इसमें शायद दो चार कविता हों जिनमें रहस्यवाद हो, किन्तु फिर भी रवीन्द्रनाथ रहस्यवादी ही रहे। दो एक उदाहरण लिया जाय, पाठक स्वयं ही अपनी राय क़ायम कर लें।

एक नक्षत्र की आत्महत्या

एक नक्षत्र आकाश से पागल की तरह समुद्र के काले पानी में कूद पड़ा। करोड़ों दूसरे नक्षत्रों ने इस आत्महत्या को भीत तथा चकित होकर देखा, देखा कि किस भाँति प्रकाश का एक परमाणु जो उनके साथ था बात की बात में अन्धकार में विलुप्त हो गया। यह जाकर समुद्र के चट्टानी गर्भ तक पहुँच गया जहाँ सैकड़ों नक्षत्र जिनका प्रकाश लुप्त हो चुका, बिखरे पड़े हुए थे।

आखिर इस आत्महत्या की मर्म-कथा क्या थी? केवल मैं ही जानता हूँ कि उसकी इस रौनक़ में कौन सी बात उसे खाये जारही थी।

यह अनवरत हँसी की यत्रंणा थी। एक जलता हुआ कोयले का टुकड़ा अपने कालेपन को छिपाने के लिये हँसता है। जितना ही वह हँसता है उतना ही वह जलता है। उसी तरह यह नक्षत्र हँसा और उज्वल हो गया। फिर जब जलने की यत्रंणा उससे और बर्दाश्त नहीं हुई तो वह प्रकाश के जगत से समुद्र के ठंडे कालेपानी में कूद पड़ा।

करोड़ों उज्वल नक्षत्रों ने इस पतित नक्षत्र की ओर देखा, और वे घृणा से हँस पड़े।

उनलोगों ने कहा—"भला हमें क्या हानि है, आकाश तो उसी तरह उज्वल बना है।"

यदि कोई तुला हुआ ही हो तो इस कविता का भी रहस्यवादी अर्थ हो सकता है, किन्तु जैसी यह है वह बिना व्याख्या के ही हमारी समझ में आती है। इसकी किसी आध्यात्मिक या अतीन्द्रिय व्याख्या की जरूरत नहीं।

एक दूसरी कविता लीजिये—

प्रेतात्मा *The Ghost*

जब वृद्ध मरने लगा तो सारे देश ने रोया पीटा, सिर धुना और कहा प्रभो तुम्हारे बगैर हमारा काम कैसे चलेगा ?"

वृद्ध मन ही मन यह सोचकर परेशान हो रहा था कि यदि मैं मर गया तो इनको राहेरास्त पर कौन कायम रक्खेगा। हाय ?

देवताओं ने जाति की प्रार्थना सुन ली, और यह हुक्म दिया कि वृद्ध मरने पर प्रेत हो कर देश में रहेगा। मनुष्य तो मर जाते है किन्तु प्रेत अमर होते हैं ?

जाति की जान में जान आई।

बात यह है जब दृष्टि भविष्य पर निबद्ध होती है तभी परेशानी होती है, जब आँखें केवल भूतकाल पर रहती हैं तो परेशानियाँ खतम हो जातीं हैं। फिर तो सारी जिम्मेदारियों को भूतकाल के सिर मढ़ दिया जाता है, और भूतकाल एक प्रेत के रूप में जीता है।

फिर भी कुछ लोगों ने हर बात पर भूतकाल से अनुप्रेरणा लेने के बजाय सोचना चाहा। प्रेत ने उनके कान पकड़ कर खींचे, बात यह है उसकी कंकालमय ऊँगलियों से कोई बच तो सकता ही नहीं था।

आँखों को तथा मन को बन्द कर सारा देश प्रेत के नेतृत्व में चलने लगा। बूढ़ों तथा विद्वानों ने कहा—इसी प्रकार चलना ही पृथिवी की पुरानी परिपाटी के अनुसार है। जीवन की उषा के समय दृष्टिशक्तिहीन सरीसृप *amoeba* भी इसी तरह चलते थे, पेड़ पौधे अब भी ऐसा करते हैं, इसी में उनकी बुद्धिमानी है।

प्रेताविष्ट जाति ने बड़बूढ़ों की यह बात जो सुनी तो उनमें आनन्द की एक लहर दौड़ गई कि उनके बाप दादे ऐसा ही करते थे, और आदिम पृथिवी के आदिम सरीसृप तक ऐसा ही करते थे।

देश के चारो ओर कारागार की तरह एक चहार दीवारी बन

गई, हाँ ये दीवारें अदृश्य थीं, इसलिये कोई भी जानता नहीं था कि इनको कैसे पार किया जाता है या इनसे कैसे भागा जा सकता है।

कैदी जाति प्रेत के नेतृत्व में गुलामी करती रही। कड़े परिश्रम का नतीजा यह हुआ कि विद्रोह का जोश जाता रहा। वह डरपोक हो गई फलस्वरूप इस प्रेत के राष्ट्र में चाहे स्वास्थ्य, अन्न, वस्त्र की कमी हो, किन्तु शान्ति की कमी नहीं रही।

ऐसे ही दिन बीतते गये। जाती सन्तोष में रही, मानो वह प्रेत के गाड़े हुए इस्पात के खूँटे में बँधा हुआ एक भेड़ का बच्चा हो।

किन्तु दिक्कतें पैदा होने लगीं। पृथिवी की किसी और जाति पर प्रेत का राज्य नहीं था, इसलिये दूसरे देशों में उन्नति का रथ जल्दी-जल्दी आगे ही बढ़ता गया। ऐसी जातियाँ थीं जिन्होंने प्रेत की प्यास बुझाने के लिये एक भी बूँद रक्त नहीं दिया था, इसलिये उनकी शक्ति न क्षय होने के कारण वे बिलकुल जिन्दा थे।

बूढ़ों ने भूतकाल की अपनी पोथियों तथा पत्राओं को देखा और एक स्वर से कहा—दोष न तो हमारा है, न तो हमारे शासक प्रेत का ही है, बल्कि समस्याओं का ही है। भला इन समस्याओं का क्या काम था कि ये होतीं ?

जाति ने जब बूढ़ों की इन बारीक बातोंको सुना, तो उसे तसल्ली हुई।

किन्तु दोष चाहे किसी का हो, समस्याओं की वृद्धि को कौन रोक सकता था ? कुछ दिनों के अन्दर समुद्र पर से टिड्डियों की तरह विदेशियों के झुंड आने लगे और फसलों से भरे खेतों को चाट डालने लगे। ये विदेशी व्यवहारिक बुद्धि के व्यक्ति थे, इनमें काम करने की शक्ति थी तथा दूरदर्शिता थी। प्रेताविष्ट होने के कारण जाति ने या तो इनकी अवज्ञा की थी, या इनसे दूर रही जिससे कि कहीं धर्मनाश न हो जाय। तब बूढ़ों ने फिर किताब खोली, और कहा—वे ही सौभाग्यवान हैं जो दुनिया के रगड़ों-झगड़ों से दूर रहते हैं।

लोगों ने सुना, और उनके हृदय को तसल्ली हुई।

किन्तु फिर भी वह प्रश्न जो लोगों को परेशान कर रहा था हल नहीं हुआ : "फिर इन उजड़े हुए खेतों से लगान कैसे दिया जाय।"

कब्रिस्तान से हहराती हुई एक हवा आई जैसे किसी प्रेत की हँसी हो, उसने कहा—अपनी इज्जत से दो, हृदय के रक्त से दो, अपनी आत्मा से दो।

जब प्रश्न आते हैं तो उनकी झड़ी सी लग जाती है।

इसलिये एक दूसरा प्रश्न उठा क्या प्रेत का राज्य चिर स्थायी है?

दादे और दादियाँ धक से रह गई, कहाँ—हमने ऐसा प्रश्न कभी सात जनम में नहीं सुना था, भला यह भी कभी हो सकता है कि यह राज्य न रहे।

प्रेत के कर्मचारियों ने व्यंग की हँसी हँस कर कहा—कोशिश करके देखो कि कभी यह अदृश्य दीवारें टूट भी सकती हैं।

सच बात तो यह है कि भूतकाल न तो मरा ही था न जिन्दा था, बल्कि यह प्रेत रूप में था। कभी न तो इसने देश में कोई उथल-पुथल ही मचाया, और न वह देश को छोड़कर चला ही गया।

एक या दो आदमी जो दिन में मुह इसलिये नहीं खोलते थे कि कहीं राजद्रोह न हो जाय, उन्होंने रात को प्रेत से कहा—प्रभो क्या अभी तुम्हारा जाने का समय नहीं हुआ?

तब प्रेत हँसा और बोला—अरे सरल हम कैसे तुझे छोड़कर जा सकते हैं जब तू हम से जाने को नहीं कहता।

उन लोगों ने कहा—प्रभो हम में से बहुतेरे तुम्हारे जाने के नाम से घबड़ाते हैं।

प्रेत फिर हँसा।—"तुम्हारे भय के स्तंभ पर ही मैं राज्य कर रहा हूं"—उसने कहा

रूढिवाद पर आघात

यदि कोई कहे कि इस कविता में कुछ भी रहस्यवाद है तो

हम नहीं मानेंगे, यह तो बूढ़े धर्मपीड़ित भारतवर्ष का एक चित्र है। इसका उद्देश्य स्पष्ट है। कवि के हृदय में भारतीयों के रूढ़िवाद से चोट लगी है, यह कविता उसी का स्फुरणमात्र है। फिर भी इस कविता में उद्देश्य ही सब कुछ नहीं है। जिस कलामय तरीके से यह कहा गया है वही उसको कविता बनाता है। हम इसी प्रकार की कवीन्द्र की सैकड़ों कविता दिखा सकते हैं जहाँ रहस्यवाद फटकता भी नहीं।

काव्यमय कहानी

रवीन्द्रनाथ की बहुत सी कवितायें ऐसी हैं जिन्हें हम काव्यमय कहानी कह सकते हैं, इनमें किसी एक भाव को लेकर अत्यन्त कलामय चुभती हुई भाषा में एक कहानी कही गई है, पाठक के हृदय में एक टीस या आनन्द की लहर छोड़ जाती है। यह कहा जा सकता है कि इन कहानी मूलक कविताओं में कवि अपनी कला के शिखर पर नहीं पहुँचे, किन्तु यह बात ग़लत है। आश्चर्य तो बल्कि इस बात से होती है कि दिनानुदैनिक छोटी घटनाओं को लेकर कवि कैसे कला के उत्तुंग सौध का निर्माण करते हैं।

मुक्ति

डाक्तोर जा वले बलुक नाको
राखो राखो खुले राखो
शिओरेर ओई जानला दुटो, गाये लागुक हावा।
ओषुध ? आमार फुरिये गेछे आषुध खावा।
तितो कड़ा कतो ओषुध खेलाम ए जीवने,
दिने दिने क्षणे क्षणे।
बेंचे थाका, सेन्ई जेनो एक रोग;

+ पूरी कविता न देकर हम केवल उसका अनुवाद देरहे हैं, पाठक इस कविता के छन्द को देखे

कतो रकम कविराजी, कतोई मुष्टियोग

इत्यादि +

"डाक्टर चाहे जो कुछ भी कहे, रहने दो, सिराहने के उन दो जँगलों को खुले रहने दो, जरा बदन में हवा लगने दो। दवा ? दवा पीना मेरा खतम हो चुका है। जिन्दगी में मैंने कितनी ही दवा खाई, रोज़ खाया, क्षण क्षण खाया। वैद्य की दवा खाई, फुटकर दवा खाई; किन्तु क्या फायदा ? ज़रा इधर से उधर हुआ नहीं कि फिर वही। यह अच्छा यह खराब, जो जो कुछ कहता था सब की बातों को मानती हुई, घूँघट काढ़-कर मैंने तुम्हारे घर में बाईस साल काट दिये। तभी तो घर में और घर के बाहर सभी मुझे लक्ष्मी कहते हैं, अच्छी बतलाते हैं। इस घर में मैं नौ साल की एक लड़की आई थी, फिर इस परिवार की गली से होकर तमाम लोगों की इच्छा का बोझ उठाती हुई मैं अपने रास्ते के अन्त में पहुँची।

"सुख दुख की बात ज़रा सोचूं इतना समय नहीं था। यह जीवन अच्छा है, या बुरा, या और कुछ, कुछ आगापीछा सोचूँ इतना मौका कब मिला। एक इकरस क्लान्त धुन में काम का चक्का घूमता रहा। बाईस वर्ष तक मैं एक ही चक्के में बँधी रही, घुमनी में अन्धी बनी हुई। मुझे मालूम ही नहीं हुआ मैं क्या हूँ, मुझे यह भी मालूम नहीं हुआ कि यह पृथिवी भी कोई चीज़ है और उसका कोई अर्थ भी है मैंने यह कभी नहीं सुना कि मनुष्य की कोई वाणी है जो महाकाल की वीणा में झँकृत हो उठती है। मैं सिर्फ यही जानती थी कि पकाने के बाद खाना है, और खाने के बाद पकाना है, बाईस साल तक मैं एक ही चक्के में बँधी रही। अब मालूम होता है वह चक्का बन्द होने वाला है। तो होने न दो। अब दवा की क्या ज़रूरत ?

बाईस वसन्त आये थे, गन्ध से विह्वल दक्षिण वायु ने जल

और स्थल में एक उत्तेजना पैदा की थी। उसने चिल्ला कर कहा होगा—खोलो किवाड़े खोलो—किन्तु मैं भला कब जान पाती थी कि वह कब आई और कब सिर टकराकर चली गई। शायद वह धीरे से आकर मेरे मन को छू देती थी, शायद उससे घर के काम में कुछ गलती हो जाती थी, हृदय में जैसे कोई पिछले जन्म की व्यथा छू जाती थी, अकारण ही जैसे किसी के पैर की आहट सुनकर विह्वल फागुन में मन उचट जाता था। तुम शाम को दफ्तर से लौटते थे, फिर कहीं मुहल्ले में शतरंज खेलने जाते थे, जाने दो उन बातों को। हाय आज यह सब क्षणिक व्याकुलता की बातें क्यों याद आ रही हैं?

आज पहिली बार बाईस वर्ष के बाद वसन्त इस घर में आया है। जँगले से आकाश की ओर ताकते हुए मन आनन्द से सिहर-सिहर उठता है। आज मुझे मालूम हो रहा है कि मैं नारी हूं, महीयसी हूं, मेरे ही सुर में निन्द्रा-हीन चन्द्रमा ने अपनी ज्योत्स्ना रूपी वीणा को बाँधा है। यदि मैं न होती तो सान्ध्य नक्षत्र का निकलना व्यर्थ होता, तथा बाग में फूलों का खिलना अर्थहीन होता।

बाईस वर्ष तक मैं तुम्हारे इस घर में क़ैदिन थी। फिर भी उसके लिये दुःख नहीं था, बात यह है सुधबुधहीनता में दिन बीत जाते थे, यदि जीती तो और भी बीत जाते। जहाँ पर जो भी हमारे रिश्तेदार थे वे मुझे लक्ष्मी कहते थे, मानों इस जीवन में ऐसी कहलाना ही मेरी परम सार्थकता थी। घर के कोने में रहना, और वहीं से लोगों की इस किस्म की तारीफें सुनना। आज न मालूम कब, मेरे बन्धन की वह रस्सी कट गई। आज वहाँ पर जहाँ जन्म तथा मृत्यु एक कूलहीन मुहाने में जाकर मिल गई है, वहाँ मैं देखता हूँ कि रसोई खाने की दीवारें ज़रा से फेने की तरह विलीन हो गई हैं। इतने दिनों में मालूम होता है पहले

पहल विवाह की वंशी विश्व-आकाश में बज रही है। तुच्छ बाईस साल आज घर के कोने के धूल में पड़े रहे। मृत्यु की सुहाग रात में आज जो मुझे बुला रहा है वह मेरे द्वार में प्रार्थी बनकर आया है, वह केवल मेरा प्रभु नहीं है, इसलिये वह मुझे अवहेला नहीं करेगा। मुझ में जो सुधारस है वह आज उसे माँग रहा है। ग्रहताराओं की सभा में वह निर्निमेष नेत्रों में वह मेरे मुंह की ओर टकटकी लगाये खड़ा है। यह भुवन मधुर है, हे मेरे अनन्त भिखारी मेरे मरण, व्यर्थ बाईस वर्षों से मुझे काल के पारावार में पार कर दो। +

पीड़िता नारी के साथ सहानुभूति

इस कविता में कुछ भी रहस्यवाद नहीं है। नारी विशेष कर भारतीय नारी की अत्यन्त मर्मभेदी कहानी इसमें है। नारी की दयनीय पराधीन दशा का इसमें चित्र है। सच है, इसमें नारी को आधुनिका की तरह विद्रोह की तलवार झनझनाते नहीं सुनते परन्तु उसे एक *fatalist* या भाग्यवादी की तरह अपने अन्त का आवाहन करती हुई पाते हैं, किन्त क्या यही हमारे यहाँ की नारी का सचा चित्र नहीं है? उर्वशी तथा अन्य ऐसी कबिताओं में कवीन्द्र ने नारी को कल्पना के रंगीन चश्मों से देखा है किन्तु बंगाली मध्यवित्त श्रेणी की नारी का जो चित्र 'मुक्ति' कविता में दिखलाया गया है वह वास्तविक है।

रवीन्द्रनाथ की उर्वशी

रवीन्द्र-समालोचना में उनकी उर्वशी की आलोचना एक मुख्य वस्तु है। कवि मोहितलाल ने इस कविता की विस्तृत आलोचना की है, हम पहिले इसको उद्धृत करेंगे फिर अपना वक्तव्य कहेंगे वे लिखते हैं।

+पहली बार यह कविता सबुजपत्र (वैशाख १३२५) में छपी

रवीन्द्रनाथ की उर्वशी नामक कविता भाषा, छन्द तथा चित्र-रचना के इन्द्रजाल की दृष्टि से कितनी भी मनोहर हो, उसमें कवि अपनी मूल कल्पना से हट गये हैं। उर्वशी का जो चित्र इसमें प्रकट हुआ है उसमें सौन्दर्य देवी कामना की देवी के रूप में दृष्टिगोचर होती है। उर्वशी को कामना की देवी रूप में देखने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती, बल्कि उसका यही रूप यहाँ पर रंग लाता है, किन्तु बात तो यह है कि कवि ने उर्वशी को आदर्श सौन्दर्य की आदि प्रतिमा रूप में कल्पना कर ऐसे चित्र तथा विशेषणों का प्रयोग किया है कि उनसे विरोध की उत्पत्ति हुई है। कवि ने इस कविता में कामना को जो रूप दिया है वह पाठक को मुग्ध करता है, किन्तु इस कामना के ही उन्होंने सौन्दर्य का जो आदर्श खड़ा किया है, ज़रा सोचकर देखा जाय तो वह इस कल्पना का विरोधी मालूम होगा। इसलिये सौन्दर्यतत्व की दृष्टि से मैं इस कविता का ज़रा विश्लेषण कर दिखाना चाहता हूं।

कवि कहते हैं,

आदिम वसन्तप्राते उठेछिलो मन्थितो सागरे,

डान हाते सुधापात्र विषभांड लये वाम करे।

'उर्वशी' आदिम वसन्त के प्रातःकाल में सागर को मन्थित कर उठी थी, उसके दाहिने हाथ में अमृत का पात्र और बायें हाथ में विषभांड था।' अच्छी बात है, किन्तु जहाँ पर विषभांड की भावना थी वहाँ विशुद्ध सौन्दर्यानुभूति की बात नहीं आ सकती, काम या प्रेम की ही बात बड़ी हो उठती है। *A thiug of beauty is a joy for ever* ,विशुद्ध *aesthetic pleasure* जहाँ है वहाँ विष भी अमृत हो उठता है। उर्वशी का रूप जिस कामना को उद्रेक करता है उसमें

मुनिगण ध्यान भाँङि देय पदे तपस्यार फल

तोमार कटाक्षघाते त्रिभुवन यौवन चंचल
अकस्मात पुरुषेर वक्षोमाझे चित्त आत्महारा,
नाचे रक्त धारा।

अर्थात् 'मुनियों का ध्यान टूट कर वे अपनी तपस्या फल तुम्हारे चरणों में सौंपते है, तुम्हारे कटाक्ष के आघात से त्रिभुवन यौवन-चंचल हो जाता है, अकस्मात पुरुप के हृदय में चित्त अपने को खो बैठता है, उसके रक्त की धारा नाच उठती है'

कवि किस सौन्दर्य को वन्दना कर रहें हैं ? कवि ने जिस का उद्बोधन

नहो माता, नहो कन्या, नहो वधू

याने 'माता नहीं हो, कन्या नहीं हो, वधू नहीं हो' कहकर किया है, वह चाह 'उपा के उदय की तरह अनवगुंठिता, और 'अकुंठिता' हो; किन्तु उसके कटाक्ष के आघात से यदि त्रिभुवन यौवन चंचल हो उठै, तो भी माता, कन्या या वधू न होना उसके लिये गौरव की वस्तु नहीं हो सकती, वह मोहिनी है तथा समाधि के लिये विघ्नस्वरूपा वैश्या मात्र है; इसलिये 'उसका सर्वाङ्ग निखिल के नयन के आघात से रोयेगा' यह अधिकतर सत्य है। इस प्रकार सौन्दर्य का उदय केवल आदियुग में हीं नहीं हरेक युग में मानवचित्त में होता रहता है; यह सौन्दर्य स्वर्ग का उदयाचल नहीं है, मर्त्य का उदयाचल और अस्ताचल उभया-चलवासी है। इसके लिये जो क्रन्दन है वह आदि युग से आज तक निरवच्छिन्न रूप से होता जा रहा है। इस कविता में परस्परविरोधी कल्पना का और भी प्रमाण यह है कि जिसे कवि ने बालिका के रूप में अँधेरे सागर के नीचे अकलंकिह हास्यमुख में प्रवाल के पलँग में सोते देखा है और जिसको यौवन में अपने कटाक्ष के आघात से त्रिभुवन को यौवन-चंचल करते देखा है उसी को कवि पूछते हैं

वृन्तहीन पुष्पसम आपनाते आपनि विकशि'
कबे तुमि फूटिते उर्वशी ?

याने 'वृन्तहीन पुष्प की तरह अपने में आप विकशित होकर उर्वशी तू कब खिली ?'

प्रश्न तो यह है रवीन्द्रनाथ की तरह कवि की कल्पना में ऐसी गड़बड़ी क्यों आ गई ? इसका एक मात्र उत्तर यह है कि यूरोपीय काव्य के अत्यधिक प्रभाव के कारण कवि अपने कवि-धर्म को भूल गये हैं, इसलिये कल्पना में सामंजस्य भी जाता रहा । यह उर्वशी न तो लक्ष्मी है, न वेद पुराण की उर्वशी ही है, न रवीन्द्रनाथ के अपने मन की ही कोई सृष्टि है । यह उर्वशी काम जनने- *Aphrodite* का नया यूरोपीय संस्करण है—"*Mother of Love*" और "*Mother of Strife*" यूरोपीय काव्य में सौन्दर्य के साथ कामना तथा वेदना की अपूर्व उत्कंठा युक्त होकर साहित्य को जो मनुष्य जीवन की वास्तविकतम अनुभूति की प्रकाशकला में परिणत किया है, जिसके मर्मस्थल से *Our sweetest songs are those that tell of saddest thought* कवि की यह कातर उक्ति निकलती है, रवीन्द्र-नाथ यहाँ पर सौन्दर्य के उसी आदर्श से खिँच गये है, किन्तु इस प्रकार खिँच जाने पर भी रूप की यह पार्थिवता तथा इन्द्रिय-सर्वस्वता को उन्होंने तहेदिल से ग्रहण नहीं किया है । इसलिये उनकी उर्वशी 'नन्दनवासिनी' तथा सुरसभा की नर्तकी होने पर भी वे उसे

'स्वर्गेर उदयाचले मूर्तिमती तुमि हे उपसी'

याने 'स्वर्ग के उदयाचले में तुम मूर्तिमती उपसी हो यह कहकर ऋषि के ऋकमंत्र से उसे वंदना करते नहीं हिचकते । फिर उसी के नृत्य के सम्बन्ध में कहते हैं—

छन्दे छन्दे नाचि उठे सिन्धुमाझे तरङ्गर दल
शस्यशीर्षे शिहरिया काँपि उठै धरार अंचल

याने 'उसके छन्द में समुद्र में लहरें नाच उठती हैं तथा फ़सल के सिर पर पृथिवी का आँचल काँप उठता है।' जो ऐसी कामना-लेशहीन प्राकृतिक सौन्दर्य की महिमा में महिमामयी है, जिसके 'स्तनहार से दिगन्त के नक्षत्र गिर पड़ते हैं', उन्हीं के 'कटाक्ष के आघात से त्रिभुवन यौवन चंचल हो जाता है' और 'पुरुष के वक्ष में चित्त आत्महारा होता है और रक्त की धारा नाचने लगती है।' उर्वशी की कल्पना में यह परस्परविरोधी भाव ने कविता में रस के पूर्ण परिपक होने में बाधा पहुँचाई है। कामना की जो दिशा इसमें स्पष्ट हुई है उसको पूर्ण रूप से प्रकट नहीं किया गया; उर्वशी के बायें हाथ में कवि ने जो विषभांड दिया है उसमें अनन्त यौवना उर्वशी का वह कटाक्ष का आघात और

जगतेर अश्रुधारे धौत तव तनुर तनिमा,
त्रिलोकेर हृदि-रक्ते आँका तबो चरण-शोणिमा—

याने 'जगत की अश्रुधारा से तुम्हारे तनु की तनिमा धुली है और तुम्हारे पगचिन्ह त्रिलोक के हृदय के रक्त से अंकित हैं' तथा 'मुक्तवेणी विवसना' आदि कहने से कवि के मन में जिस रस की उत्पत्ति होती है वही इस कविता का प्रधान रस है। वह कामना और कामना की विषजर्जर क्रन्दन-उत्तेजना करने में ही यहाँ *sweetest song* की सार्थकता है। जिस अंग्रेज़ी कविता का प्रभाव इस कविता पर है मुझे ऐसा विश्वास है कि वह *Swinburne* की *Atlanta in Calydon* है उसके सुविख्यात *chorus* से कुछ उद्धृत करने पर ही पाठक समझ जायेंगे कि मैंने इस प्रभाव की बात को क्यों कहा है, और यह भी समझेंगे कि स्विनबर्न की इस कविता में रस कितना गाढ़ और उज्ज्वल हो गया है, इसके विपरीत रवीन्द्रनाथ की कल्पना (चूँकि वह रक्तमांस का विक्षोभ तथा काम की प्रधानता स्वीकार नहीं करता) इन्द्रियार्थ को अतीन्द्रिय भावविलास में कितनी ग्रस्त हो कर रह गई है।

स्विनबर्न की *Aphrodite*

स्विनबर्न कहते हैं

An evil blossom was born
Of sea-foam and the frothing of blood
Blood-red and bitter of fruit
And the seed of it laughter and tears
And the leaves of it madness and scorn
A bitter flower from the blood
Sprung of the sea without root
Sprung without graft from the years.
The weft of the world was untorn
That is woven on the day on night
The hair of the hours was not white
Nor the raiment of time overworn
When a wonder, a world's delight
A perilous goddess was born;
And the waves of the sea as she came
Clove, and the foam at her feet
Fawning, rejoiced to bring forth
A fleshy blossom, a flame
Filling the heavens with heat
To the cold white ends of the north

++ ++ ++

What hadst thou to do being born,
Mother, when winds were at ease,
As a flower of the springtime of corn
A flower of the foam of the seas?

For bitter thou wast from thy birth
Aphrodite, a mother of strife,
For before thee some rest was on earth
A little respite from tears.
Earth had no thorn, and desire
No sting, neither death any dart;
What hadst to do amongst these
Thou, clothed with a burning fire,
Thou, girt with sorrow of heart,
Thou, sprung of the seed of the seas
As an ear from a seed of corn
As a brand plucked forth of a pyre,
As a ray shed forth of the morn
For division of soul and disease
For a dart and a sting and a thorn?
What ailed thee then to be born?
\+ + + *But thee*
Who shall discern and declare
In the uttermost ends of the seas
The light of thine eyelids and hair,
The light of thy bosom as fire
Between the wheel of the sun
And the flying flames of the air?
Wilt thou turn thee not yet nor have pity,
But abide with despair and desire.
And the crying of armies undone
Lamentation of one with another
And breaking of city with city;

The dividing of friend against friend
The severing of brother and brother
Wilt thou utterly bring to an end
Have mercy, mother.

इस कविता को मैंने संक्षेप में उद्धृत किया। रवीन्द्रनाथ की 'उर्वशी' पर इस कविता का प्रभाव है। यह प्रश्न इस क्षेत्र में अप्रासंगिक है। रवीन्द्रनाथ ने अभी हाल ही में अनुकरण और स्वीयकरण (अपना कर लेने) में जो भेद बताया है वह इस समय याद दिलाना चाहता हूं। रवीन्द्रनाथ की कल्पना में स्विनबर्न की *Aphrodite* ने बहुत कुछ आवेग पहुँचाया है इसका यथेष्ट प्रमाण उद्धृत अंशों से मिलेगा। स्विनबर्न की एफ्रोडाइट का सौन्दर्य जैसे

An evil blossom + + + blood red and bitter of fruit +
And the seed of it laughter and tears

उसी तरह रवीन्द्रनाथ की उर्वशी
+ + + उठेछिलो मन्थितो सागरे,
डान हाते सुधापात्र, विषभांड लये वाम करे ;
स्विनबर्न की *Aphrodite* जैसे

Sprung of the sea without root
Sprung without graft from the years

उसी तरह कवीन्द्र उर्वशी को प्रश्न कर रहे हैं
वृन्तहीन पुष्पसम आपनाते आपनि विकशि—
कबे तुमि उठिले उर्वशी ? (१)

+सागर को मन्थित कर दाहिने हाथ में सुधापात्र और बायें हाथ में विषभाँड लेकर उठी थी।

(१) हे उर्वसी तू वृन्तहीन पुष्प की तरह अपने में आप विकसित होकर कब उठी ?

हाँ स्विनबर्न की *Aphrodite* उर्वशी की तरह नर्तकी नहीं है, फिर भी उर्वशी के नृत्य के छन्द में जैसे समुद्र की लहरें तथा शस्य शीर्ष में धरा का अंचल तरंगित हो उठता है, किन्तु एफ्रोडाइट के सौन्दर्य की व्याप्ति तथा विकास इसी तरह का है

In the uttermost ends of the sea
The lights of thine eyelids and hair

यहाँ एफ्रोडाइट से उर्वशी में कवि की कल्पना अधिक स्फूर्ति पा सकी, किन्तु

The lights of thy bosom as fire
Between the wheel of the sun
And the flying flames of the air?

इन पंक्तियों का *paraphrase*

तब स्तनहार हते दिगन्तेर खसि पड़े तारा (२)

ने रवीन्द्र की उर्वशी के सौन्दर्य को स्निग्ध कर दिया है, *flying flames of the air* से 'तारे छिटक पड़ते हैं, सैकड़ों गुना *suggestive* हुआ है, फिर

Wilt thou turn thee not yet nor have pity
But abide with despair and desire

और

जगतेर अश्रुधारे धौत तवो तनुर तनिमा
त्रिलोकेर हृदि-रक्ते आँका तव चरण-शोणिमा

आदि की विचार-शैली विभिन्न होने पर भी, या कहीं-कहीं जैसे

And the waves of the sea as she came

(२) तेरे स्तनहार से दिगन्त के नक्षत्र छिटक पड़ते हैं।

Clove, and the foam at her feet
Fawning

तरङ्गित महासिन्धु मन्त्रशान्त भुजङ्गेर मतो
पड़ेछिलो पदप्रान्ते, उच्छसिनो फरण लक्ष शत
करि अवनत+।

एक दम अनुवाद-सा होने पर भी, दोनों में जो प्रभेद है उससे उर्वशी कविता दुर्बल हो गई है, कल्पना की जहाँ समता है वहीं पाठक मुग्ध होता है। दोनों के सौन्दर्य का मूल कारण कामना है। इस कामना को ही रवीन्द्रनाथ ने एक स्निग्ध अतीन्द्रियता से मंडित करने की चेष्टा की, किन्तु वे असफल रहे, इसके विपरीत केन्द्रीय भाव ही दो हिस्सों में बट जाने के कारण रसाभास हुआ है।

सौन्दर्य कल्पना की वह दिशा (जिसने मनुष्य की कामना को प्रदीप्त कर साहित्य के एक बड़े भाग को उज्ज्वल किया है) इसमें प्रकट हुई है।

मोहितलाल की उर्वशी समालोचना को मैं उद्धृत कर चुका, किन्तु और भी थोड़ा उद्धृत करने की आवश्यकता है जिससे कि उनकी पूरी बात पाठक के सामने आ जाय। वे कहते हैं

रवीन्द्रनाथ में सौन्दर्य का एक दूसरा आदर्श

रवीन्द्रनाथ के काव्य में ही सौन्दर्य का एक दूसरा आदर्श प्रकट है, मैं संक्षेप में उसका उल्लेख करूँगा, आलोचना जिससे बढ़ न जाय मैं उसको उद्धृत नहीं करूँगा, केवल दिशा भर बता दूंगा। 'वलाका' की 'दुइ नारी' शीर्षक कविता में रवीन्द्रनाथ ने उर्वशी और लक्ष्मी दोनों के रूप का वर्णन किया है, फिर लक्ष्मी के सौन्दर्य को ही तरजीह देकर उसी पर मुग्ध हुए हैं। "चित्राङ्गदा"

+तरङ्गित महासिन्धु मन्त्रशान्त भुजङ्ग की तरह पदप्रान्त में गिर पड़ा था, उसने अपनी लाखों उच्छसित फणाओं को अवनत कर लिया था।

काव्य में चित्राङ्गदा का स्वर्गीय रूप-लावण्य देखकर अर्जुन के चित्त में जो चमत्कार पैदा हुआ था वह यों है

केनो जानि अकस्मात
तोमारे हेरिया बुझिते पेरेछि आमि
कि आनन्दकिरणेते प्रथम प्रत्यूषे
अन्धकार महार्णवे सृष्टि-शतदल
दिग्विदिके उठेछिलो उन्मेषितो हये
एक मुहूर्तेर माझे + + +
+ + + + चारिदिक हते
देवेर अङ्गुलि जेनो देखाये दितेछे
मोरे, ओई तव अलोक आलोक माझे
कीर्तिक्लिष्ट जीवनेर पूर्ण निर्वापण।

या अन्यत्र

भाविलाम

कत युद्ध, कत हिंसा, कत आड़म्बर
पुरुषेर पौरुष-गौरव, वीरत्वेर
नित्य कीर्तितृषा, शान्त हये लुटाइया
पड़े भूमे, ओई पूर्ण सौन्दर्येर काछे
पशुराज सिंह यथा सिंहवाहिनीर
भुवन-वाञ्छित अरुण चरणतले।

याने "नमालूम क्यों तुमको देखकर अकस्मात मैंने जाना है कि प्रथम प्रभात में एक किरण से अन्धकार महासमुद्र में सृष्टी का शतदल दिशाओं में एक मुहूर्त में उन्मेषित होकर उठा था +++ चारों तरफ़ से देवता उँगलियों ने मानो मुझे दिखला दिया कि

तुम्हारे इस अलौकिक आलोक में कीर्तिक्लिष्ट जीवन का पूर्ण निर्वापण है। + + + मैंने सोचा तुम्हारे उस पूर्ण सौन्दर्य के सामने कितने युद्ध, कितनी हिंसायें, पुरुष का पौरुष-गौरव, वीरता की नित नई कीर्ति की प्यास शान्त होकर चरणों में लोटने लगती है, जैसे पशुराज सिंह सिंह वाहिनी दुर्गा के भुवन-वांछित अरुण चरणों में लोटता है।"

मोहितलाल की राय में रवीन्द्रनाथ में सौन्दर्य का यह दूसरा आदर्श है, उनके मत में यहाँ केवल कामना नहीं, पुरुष का पौरुष स्तंभित हो जाता है, जैसे जीवन्मुक्ति होती है वे कहतेहै "यहाँ किसी कर्म-प्रवृत्ति हृदय-वृत्ति का अवसर नहीं है, हम जिसको जीवन कहते हैं वह द्वंद और विक्षोभ शान्त हो जाता है, क्षुद्र चेतना जैसे एक वृहत्तर चेतना में लुप्त हो जाती है, इसी का नाम जीवन का पूर्ण निर्वापण है। इस सौन्दर्यप्रीति का नाम ही *æstheticism artistic monasticism*—है

दोनों आदर्श एक हैं।

मैं मोहितलाल के अपने वाक्यों तथा उदाहरणों से ही दिखलाऊँगा कि उनकी अँग्रेजी काव्यमर्मज्ञता ने उनको पथभ्रष्ट कर दिया है और वे उर्वशी को ठीक नहीं समझ पाये। मैं पहिले इस बात पर आऊँगा कि क्या रवीन्द्रनाथ की उर्वशी और चित्राङ्गदा में कोई आदर्शगत भेद है, या उनमें उतना ही प्रभेद है जितना दो यात्रियों में आदर्शगत या मौलिक भेद न होते हुए भी होना चाहिये। चित्राङ्गदा के सौन्दर्य में मोहितलाल जीवन का पूर्ण निर्वापण देखते हैं, किन्तु मैं तो केवल एक प्रकार के जीवन (जिसमें वीरत्व की नित नई कीर्ति की प्यास वगैरह थी) उसीका निर्वापण देखता हूँ, और एक दूसरे प्रकार के शायद हृदय के अधिकतर तड़पनयुक्त जीवन का सूत्रपात देखता हूँ। यदि किसी नारी के रूप को देखकर तरह षसिंह अपने पौरुष को भूल जाता है, अपने

जीवन के अब तक के तरीकों पर लात मारकर उस सुन्दरी रूपसी के चरणों में लोटने को उद्यत हो जाता है, तो इसे जीवन का पूर्ण निर्वापण कैसे कहेंगे। मैं तो इसमें कामनामय सौन्दर्य को ही देखता हूँ। मोहितलाल जिसको *Æstheticism* या *Artistic monasticism* कहकर चीख उठते है मैं तो उसमें अत्यन्त कामनामय सौन्दर्यानुभूति ही देखता हूँ किन्तु इसमें मैं मोहितलाल को दोष नहीं देता, कामना-लेशहीन सौन्दर्यानुभूति मनोवैज्ञानिक दृष्टि से असंभव चीज़ है। इसलिये यदि 'उर्वशी' कविता में रवीन्द्रनाथ कथित कल्पना से विचलित हो गये हैं, तो यह प्रकट करता है कि दार्शनिकता के आवेश में कवि अपने कवि-धर्म को भूलते-भूलते नहीं भूलते हैं। यदि मोहितलाल की बात मान ली जाय तो यही प्रमाणित होगा कि सौभाग्य से कविवर अपने अन्तर की पुकार पर ही चलते हैं, सौन्दर्यविज्ञान की पुस्तकों पर नहीं। मोहितलाल ने स्वयं ही आगे चलकर माना है "इसमें (*æstheticism*) वास्तविक जीवन और जगत के प्रति उदासीनता होती है, अतएव इसमें सृष्टि का पूर्ण सत्य नहीं है, यह भी सूक्ष्मतर इन्द्रियविलास या अतीन्द्रिय भाव-विलास है।"

दूसरा आदर्श केवल काल्पनिक

इससे स्पष्ट है कि कविता का यह दूसरा आदर्श अवास्तविक है, इससे जीवन का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह अच्छा ही हुआ कि कविता के इस प्राणहीन संगमर्मर निर्मित आदर्श को न अपना कर रवीन्द्रनाथ ने तड़पनयुक्त सजीव आदर्श को अपनाया। इसी आदर्श की प्राणरसपुष्टता के कारण ही उर्वशी कविता नारी पर एक श्रेष्ठ कविता है। मोहितलाल ने यह जो कहा है "माता नहीं हो कन्या नहीं हो वधू नहीं हो" के साथ "तुम्हारे कटाक्ष के आघात से त्रिभुवन यौवन चंचल हो जाता है" इसका सामंजस्य नहीं है मेरी राय में यह बात ग़लत है। उर्वशी कोई गणित का सवाल नहीं,

है, वह एक जीती-जागती तड़पती फड़कती चीज़ है, कवि-कल्पना में कभी ऐसी कभी वैसी मालूम होगी इसमें आश्चर्य क्या है। जिसको हम प्यार करते हैं उस नारी के सम्बन्ध में ऐसे भाव का आनाजाना आश्चर्यजनक नहीं है। कभी तो उसके कटाक्ष पर सारी पृथिवी घूमती हुई मालूम होती है, कभी वह इतने दूर की वस्तु मालूम होती है कि वह न तो माता न कन्या न वधू मालूम होती है। क्या यह बात कोई ऐसी अनहोनी है कि समालोचक मोहितलाल को मालूम नहीं हुई।

सौन्दर्य विज्ञान की कसौटी पर उर्वशी

मोहितलाल ने कीटस की एक पंक्ति *A thing of beauty is a joy for ever* लेकर यह दिखाया है कि "दाहिना हाथ में सुधापात्र तथा बायें हाथ में विषभांड लेकर इसमें विषभांड का उल्लेख विशुद्ध सौन्दर्यानुभूति में वाधक है। फिर एक बार मैं विद्वान समालोचक से सहमत नहीं हो सकता। मैं तो समझता हूं इस विषभांड की मौजूदगी ही सुधापात्र को और भी सुधामय बना देती है, यही प्रकृति का नियम है। मृत्यु के कारण ही जीवन मधुर है, विरह के भय के कारण ही मिलन प्रिय है, इत्यादि इसके कितने उदाहरण है; फिर यदि स्वर्ग रूपसी चिरयौवना उर्वशी के एक हाथ के सुधापात्र को मधुरतर बनाने के लिये कवि ने दूसरे हाथ में विषभांड की कल्पना की है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? फिर यह केवल कल्पना ही नहीं है; क्या रूप और कामना की देवी वह चाहे जिसके लिये जो नाम रखती हो वह एक हाथ में अपने प्रेमिक के लिये 'अमी' और दूसरे में 'हलाहल' नहीं रखती? एक हिन्दी कवि जो शायद स्विनबर्न के परदादा के परदादा के परदादा से भी आगे थे प्रिया के नयनों को अमृत, हलाहल और मद से भरे देखे हैं। मुझे डर है विद्वान् समालोचक कीट्स की बात *A thing of beauty is joy for ever* को ठीक ठीक नहीं समझे, क्या रवीन्द्रनाथ की

उर्वशी कहीं पर *joy for ever* नहीं है *joy* या आनन्द एक *subjective* चीज़ है, इसलिये प्रेमिक तथा पुजारीकी आँखों में क्या आनन्द होगा, यह साधारण नियम से बताया नहीं जा सकता, सिसक-सिसक कर मरने में ही यदि किसी को आनन्द मिले तो ?

उर्वशी पर एक और बात, और हम खतम कर चुके। मोहित-लाल ने कहा है कवि ने जिसको अन्धकार सागर के नीचे प्रवाल के पलँग पर अकलंक हास्यमुख से सोते देखा है तथा यौवन में जिसके कटाक्ष से त्रिभुवन को यौवन-चंचल होते देखा है उसी को नित्यपूर्ण और स्वयंप्रकाश सौन्दर्य के प्रतीक रूप में कल्पना करते हुए जो प्रश्न करते है "वृन्तहीन पुष्प की तरह अपने में आप विकसित होकर हे उर्वशी तू कब खिली ?" इससे कल्पना में गड़-बड़ी आ गई है। मैं नम्रता पूर्वक कहना चाहता हूँ फिर समालोचक-गलत समझे ? याद यह रहे नित्यपूर्ण और स्वयंप्रकाश शब्द समा-लोचक के हैं, फिर कवि जो प्रश्न पूछते हैं कब खिली न कि कब पैदा हुई। कवि ने उसको कली की अवस्था में देखा, फिर खिली अवस्था में देखा किन्तु प्रश्न यह है कब वह खिली। मैं समझता हूँ यह एक प्रासंगिक प्रश्न है। सृष्टि में इसी रहस्य को समझाने के लिये वैज्ञानिकों ने *emergent evolution* आदि कितने ही अर्ध-वैज्ञानिक सिद्धान्त बनाये हैं।

अब रहा यह कि स्विनबर्न की कविता से रवीन्द्रनाथ को कहाँ तक मसाला मिला, यह हमने पाठकों के सन्मुख रख दिया, किन्तु जो कुछ भी पेश किया उसी से मालूम होता है कुछ नहीं लिया। विशेष कर जहाँ बतलाया गया है कि

And the waves of the sea as she came

इत्यादि

का एक-दम अनुवाद है, वहाँ तो हमें मालूम होता है

+ + + मन्त्रशान्त भुजङ्गेर मतो

+++ फणा लच शत

करि अवनत,

से कवीन्द्र ने कथित अनुवाद को इतना सुन्दर बना दिया है कि मूल बड़ा दुर्बल मालूम देता है।

रवीन्द्रनाथ पर एक सरसरी निगाह

अब हम सरसरी तौर पर रवीन्द्रनाथ पर दो-चार बाते और कहेंगे। रवीन्द्रनाथ को लोग चाहे रहस्यवादी समझें और कहें, किन्तु उन्होंने साफ साफ बारबार कहा है।

सबार उपरे मानुष सत्य ताहार उपरे नाई

"सब से बढ़कर सत्य मनुष्य है, उसके ऊपर कुछ नहीं है।" बारबार रावीन्द्रीय वीणा से यह वाणी झङ्कृत हुई है। रवीन्द्रनाथ की एक प्रसिद्ध कविता है "स्वर्ग से बिदाई", इसमें मनुष्य ने स्वर्ग से कहा है—

थाको स्वर्ग हास्यमुखे, करो सुधापान
देवगण ? स्वर्ग तोमादेरि सुखस्थान
मोरा परवासी। मर्त्यभूमि स्वर्ग नहे
से जे मातृभूमि—ताइ तार चक्षे बहे
अश्रुजलधारा......

याने "हे स्वर्ग तुम हास्यमुख से रहो, हे देवताओं सुधापान करो। स्वर्ग तुम लोगों के सुख का स्थान है, हम तो यहाँ प्रवासी-मात्र है। मर्त्यभूमि स्वर्ग तो नहीं है किन्तु मातृभूमि है, तभी तो उसकी आँखों में अश्रुजल की धारा बहती है।" इस स्वर्गविमुखता के होते हुए भी रवीन्द्रनाथ का मनुष्य यहाँ लौटकर एक स्वर्गीय स्वप्न में ही विभोर रहता है, जीवन की कठिन वास्तविकताओं से उसका जैसे कोई सम्बन्ध नहीं। वह यहाँ भी कामना करता है "यदि धरातल में

दीनतम घर में मेरी प्रेयसी जन्म ले, किसी नदी के किनारे गाँव में एक पीपल के पेड़ के नीचे, वह बालिका फिर अपने वक्ष में मेरे लिये सुधा का भंडार संचित कर रक्खेगी" इसी तरह की और बातें। इसीसे रवीन्द्र-साहित्य आधुनिक होने पर भी सच्चे मानों में पूर्ण क्रान्तिकारी नहीं है। फिर भी रवीन्द्रनाथ अछूतों के दुःख से विक्षुब्ध मालूम होते है, वे जाति से कहते हैं इसको दूर करो "नहीं तो अपमान में उनको सब के समान होना पड़ेगा, उन्हें दूर रखकर तुमने मनुष्य के हृदय के देवता की अवहेलना की है।" "लकड़हारा जहाँ लकड़ा चीरता है, किसान जहाँ हल जोतता है" वहाँ पर रवीन्द्रनाथ के भगवान भी हैं; किन्तु इतनी सहानुभूति का ऐश्वर्य होने पर भी कवीन्द्र कभी भी इन दुखों की तह में जो एकदेशीय तथा वर्गीय समाजव्यवस्था है उस तक नहीं पहुँच पाते।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ के सम्पादन में "बंगला-काव्य परिचय" नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, इसमें कवीन्द्र ने अपनी १७ कवितायें दी हैं, किन्तु मेरी राय में इसमें से एक भी कविता रहस्य-वादी नहीं है इसी से यह निष्कर्ष तो नहीं निकलना चाहिये कि वे अपनी उन कविताओं को जो रहस्यवादी (*mystic*) हैं, उनसे वे अपनी दूसरी कविताओं को अच्छी नहीं समझते, किन्तु इससे यह अर्थ तो निकाला ही जा सकता है कि अपनी कविताओं में कवित दृष्टि से वे अपनी रहस्यवादी कविताओं को विशेष महत्त्व नहीं देने के लिये तैयार हैं। सौभाग्य से बँगला साहित्य में गीतांजलि ही रवीन्द्रनाथ का श्रेष्ठ दान नहीं है। मोहितलाल ने लिखा है और मैं इससे सहमत हूँ कि रवीन्द्रनाथ की विशेषता यह है कि उन्होंने प्राच्य भाव-साधना और प्रतीच्य रूप-साधना का सुन्दर समन्वय किया है। इसी कारण प्राच्य के रहस्यवाद ने उनके हाथों में एक नया ही रूप धारण किया है। एक विद्वान् समालोचक का तो यह कहना है कि रहस्यवादी कवितायें (*mystic poems*) रवीन्द्रनाथ की

प्रतिभा का श्रेष्ठ दान नहीं है।

कुछ भी हो यूरोप में इन रहस्यवादी कविताओं की ही धूम रही, रवीन्द्र-प्रतिभा में चूँकि प्राच्य भावपरायणता का प्रतीच्य रूपव्याकुलता का समन्वय है इसलिये दोनों प्रकार के पाठकों को उनकी कविता में अभिनवत्व मिलता है।

एक जीवन में कई जन्म और कई जीवन

मैं पहिले ही कह चुका कि रवीन्द्रनाथ को किसी वाद के विशेषण में लाकर यह कहने की चेष्टा करना कि इसी वाद के वादी है, ग़लत होगा। पाश्चात्य में टमास मान की तरह व्यक्ति हैं जो कई बार कायापलट कर दूसरे ही कलाकार हो चुके हैं, उन्होंने जैसे एक ही जीवन में कई जन्म पाये, किन्तु रवीन्द्रनाथ इसके विपरीत एक दूसरे ही तरह के जीव हैं। वे एक साथ कई जीवन जीते हैं। यदि सन् और तारीख से देखा जाय तो मालूम इस बात की सत्यता मालूम होगी। एक ही समय में वे कई तरह कविता लिखते हैं। कहीं तो वे बिलकुल फ्रायडवादी हैं तो कहीं रहस्यवादी, कहीं भावुक हैं तो कहीं विचार का नूपुर छमछम बज रहा है। यह एक न्यारी ही दुनिया है।

हिन्दी जगत में रवीन्द्रनाथ को लोग मुख्यत: अंग्रेज़ी के ज़रिये से जानते हैं, इसलिये वे हिन्दी जगत में केवल रहस्यवादी समझे जाते हैं। बात यह है वे अंग्रेज़ी गीतांजलि को ही पढ़तें हैं जिसके कारण उन्हें नोबुल पुरस्कार मिला, दूसरी बहुत सी पुस्तकों को वे पढ़ने का कष्ट नहीं उठाते। यदि वे गीतांजलि के अतिरिक्त "सोनार तरी" "बलाका" आदि पढ़ें तो उनकी यह धारणा जाती रहे।

आधुनिकों के आधुनिक किन्तु

अन्त में हम रवीन्द्रनाथ की 'एबार फिराओ मोरे' (अब मुझे

लौटाओ) कविता का अनुवाद देकर इस दौर को समाप्त करते हैं। यह कविता एक नई ही वाणी को लेकर शंखनाद कर रही है, जिसमें वे कहीं कहीं आधुनिकों के अधुनिक मालूम होते हैं। अर्ध-शताब्दी तक साहित्यिक क्षितिज में बराबर रहने पर भी आज भी रवीन्द्रनाथ अपनी नवीनता को कायम रख सके हैं इसका कारण यह है कि उनका ग्रहणशील (*receptise*) मन हमेशा नये युग को अपना लेता है। सब से मुश्किल होता है भाषारीति में परिवर्तन, किन्तु वे इसमें भी पिछड़े नहीं रहे। उन्होंने बुढ़ाये में बँगला की साधु भाषा को छोड़कर आम बोलचाल की भाषा अपनाई, केवल यही नहीं कि उन्होंने उसको इस्तेमाल किया बल्कि उन्होंने उसका पक्ष लेकर बड़े-ज़ोरों की वकालत की। कई समालोचक को इस बात पर बड़ा आश्चर्य है क्योंकि उनकी पहिले की सारी रचना साधु भाषा में है, और "रवीन्द्रनाथ का रवीन्द्रनाथत्व उसी भाषा में है।" पहिले ही मैं कह चुका कि रवीन्द्रनाथ मुख्यतः भद्रलोक श्रेणी के कवि हैं, संभव है जब आम-लोगों का साहित्य हो तो उसमें रवीन्द्रनाथ का स्थान यह न रहे, किन्तु बँगला भाषा को जो सौष्ठव तथा नमनीयता उन्होंने दी है वह रवीन्द्र-विरोधी से रवीन्द्रविरोधी कवि तथा साहित्यिक की अनुकरणीय होगी। बँगला भाषा का कोई भी लेखक इस ऋण से उऋण नहीं हो सकता।

एबार फिराओ मोरे

इस संसार में जब सभी हर समय सैकड़ों काम में लगे हुए हैं, उस समय हे कवि तैंने दुपहर की धूप में एक पेड़ के नीचे बैठकर दूर जंगलों की गंध बहाकर लाने-वाली हवा में केवल बाँसुरी ही बजाई। अरे आज तू उठ, कहीं आग लगी है। सुन, किसी का शंख विश्ववासी को जगाने के लिये बज रहा है। कहीं से रोने की आवाज़ से सारा आकाश गूँज उठा है। किसी अन्धकार कारागार में बन्धन से जर्जर कोई अनाथिनी सहायता माँग रही है। दुर्बल की

छाती पर चढ़कर मोटाताज़ा अपमान लाखों मुँह से रक्त पी रहा है स्वार्थ से उद्यत अविचार वेदना को परिहास कर रहा है।

वे जो लाखों मौन होकर सिर नीचा किये हुए खड़े हैं उनके कुम्हलाये हुए चेहरे पर सैकड़ों सदियों की वेदना की करुण कहानी है। जितना ही उनके सिर पर बोझ बढ़ता जाता है वे उसको उठा कर चलते रहते हैं जब तक जान रहती है, फिर मर जाने पर उसके अपने बच्चों के लिये छोड़ जाते है, न तो भाग्य को इसके लिये कोसते हैं न ईश्वर की ही निन्दा करते हैं, यहाँ तक कि मनुष्य को भी दोष नहीं देते, अभिमान नहीं जानते, केवल बस दो दाने अन्न खोंट कर किसी तरह कष्टक्लिष्ट प्राण कायम रख सकते हैं। जब उस अन्न को भी कोई छीनना चाहता है, तथा गर्व से अन्ध निष्ठुर अत्याचार से उसके हृदय पर चोट पहुँचाता है तो वे यह भी नहीं जानते कि किसके द्वार पर न्यायविचार की आशा से खड़े हो, दरिद्र के भगवान् को बस एकबार पुकार कर वह चुपचाप मर जाता है।

इन सब म्लान तथा मूढ़ मुखों में भाषा देनी पड़ेगी, इन श्रान्त शुष्क भग्न हृदयों में आशा प्रतिध्वनित करनी पड़ेगी, पुकार कर इन्हें कहना पड़ेगा—

"अरे एकबार सिर उठाकर खड़े तो हो जाओ फिर देखोगे कि जिनके डर से तुम डर रहे हो वह तुम से भी डरपोक हैं, जभी तुम जाग उठोगे वह भागकर खड़ा हो जायगा। जभी तुम उसके सामने खड़े हो गये तभी वह रास्ते के कुत्ते की तरह भय तथा संकोच से विलीन हो जायगा। ईश्वर उस पर विमुख हैं, उसका कोई सहायक नहीं, बस मुँह से वह बड़ी-बड़ी बातें छाँटता है, वह है, वह मन ही मन अपनी हीनता को जानता है।"

कवि यदि तुममें प्राण है तो उठो, उसे साथ लेकर चलो और उसका आज दान करो। इस संसार में बड़े ही दुःख हैं, बड़ी व्यथायें

है, बड़ी ग़रीबी है, हाय यह तो बड़ा शून्य है, बड़ा छोटा है, बड़ा अन्धकार है। अन्न चाहिये, प्राण चाहिये, रोशनी चाहिये, खुली हवा चाहिये, शक्ति चाहिये, स्वास्थ्य चाहिये, आनन्द से उज्ज्वल आयु चाहिये और साहस से विस्तृत हृदय चाहिये। हे कवि इस दीनता में एकबार स्वर्ग से विश्वास तो ले आओ।

हे मेरी रंगीन रंगमयी कल्पने अब मुझे लौटाकर फिर संसार के किनारे ले चलो, अब मुझे हवा हवा में लहरों-लहरों में तथा मोहिना माया में न भटकाओ। निर्जन विषाद घन अन्तर की निकुंज-छाया में मुझे बैठाकर न रक्खो। दिन जाता है सन्ध्या हो आती है, उदास हवा में वन साँस लेकर रो पड़ता है। ऐसे समय में मैं निकल पड़ा जनता के बीच। जब मैं जगत में आया था तो न मालूम किस माता ने मुझे यह खेलने की वंशी दी थी। उसीको बजाते-बजाते मैं अपने सुर में ही इतना मुग्ध हो गया कि मैं संसार-सीमा के बाहर चला-सा गया और दिन चले गये रातें चली गईं। उस वंशी में मैंने सुर जरूर सीखा है, किन्तु यदि मैं उस सुर की सहायता से इस गीतशून्य अवसादपुर को ध्वनित कर सकूँ, यदि मृत्युंजयी आशा के संगीत से कर्महीन जीवन के एक कोने को यदि एक मुहूर्त के लिये ही तरंगित कर सकूँ, दुःख यदि उसकी भाषा पा ले, अन्तर की गहरी प्यास यदि स्वर्ग के अमृत के लिये जग उठे तभी मेरा गान धन्य होगा, तभी सैकड़ों असन्तोष महागीत में निर्माण प्राप्त होगा।

कहो आज क्या गाओगे, क्या सुनाओगे ? कहो अपना दुःख झूठा है अपना छोटा सुख भी, जो व्यक्ति स्वार्थमग्न होकर बड़े जगत से दूर है, उसने कभी जीना नहीं सीखा। विश्वजीवन की महान् लहरों पर नाचते-नाचते हमें निर्भय होकर दौड़ना पड़ेगा, सत्य को ध्रुवतारा बनाकर तथा मृत्यु को न डरकर। दोदिन के आँसू सिर पर गिरेंगे, उसीमें हम उसके अभिसार में चलेंगे जिसको मैंने जन्म-

जन्म के लिये जीवनसर्वस्वधन सौंप दिया। वह कौन है? नहीं मालूम फिर भी मालूम है उसीके लिये रात के अँधेरे में यात्री मनुष्य युग से युगान्तर की ओर आँधी में वज्रपात में जा रहा है, अपने अन्दर के दीये को सावधानी से पकड़कर सिर्फ मालूम है, जिसने कानों से उसकी पुकार सुनी है वह निडर होकर संकट के भँवर में कूद पड़ा हैं उसने दुनिया पर लात मार दी है तथा अत्याचारों को सीना खोलकर ग्रहण किया है। मृत्यु के गर्जन को उसने संगीत की तरह सुना है। अग्नि ने उसको जलाया है, शूल ने उसको छेदा है, कुठार ने उसे छिन्न किया है, उसने अपनी सब प्रियवस्तु को इन्धन बनाकर बिना कातरता के ही होमाग्नि जलाई है। हृत्पिंड रूपी रक्तपद्म को उसने छिन्न कर चढ़ा दिया है और अन्तिम वार सभक्ति पूजा की है और फिर भी मरकर अपने को कृतार्थ समझा है।

मैंने सुना है उसीके लिये राजकुमार ने फटी कँथड़ी पहिन ली है और विषय विरक्त रास्ते का फ़कीर हो गया है। मैंने सुना है उसी लक्ष्य के लिये महाप्राण पल-पल में जला है, उसके चरणों में कुशांकुर घुस गये हैं, उसे मूढ़ विज्ञपुरुषों ने अविश्वास किया है प्रियजनों ने हँसी उड़ाई है, फिर भी उसने नीरव करुण नेत्रों से सभी को क्षमा कर दिया है, उसके अन्दर वह अनुपम सुन्दर लक्ष्य मौजूद था। उसीके लिये मानी ने मान तज दिया, धनी ने धन सौंपा, वीर ने प्राण दे दिये है+ + + ++ + + + +"

Idealist के नाते कवि की सीमा

मैंने विशेषकर इस कविता को इसलिये उद्धृत किया कि इसमें कवि के कइ तरह की कविताओं के नमूने एक साथ मिल जाते हैं। इसमें एक देखने की बात है कि कवि अपने को सम्बोधितकर एक क्रान्तिकारी की तरह शुरू करते है, किन्तु एक *idealist* कवि के नाते वे जल्दी ही *concrete* या निर्दिष्ट चीजों को छोड़कर अनिर्दिष्ट या *abstract* में कूद पड़ते हैं। हमे अगले दौर में भी रवीन्द्रनाथ पर बात करने का मौका मिलेगा।

३

प्राक—अति—आधुनिक युग

बँगला साहित्य में रवीन्द्रनाथ का युग अभी खतम नहीं हुआ है, इसलिये रवीन्द्रनाथ के विषय में लिखने के बाद क्या लिखा जाय यह ज़रा विचार्य है। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ कवि रवीन्द्रनाथ के समसामयिकों में ऐसे हुए हैं जिनको हम रवीन्द्रनाथ की प्रतिध्वनि नहीं कह सकते। हम पहिले ऐसे तीन कवियों का उल्लेख कर चुके हैं, एक तो अक्षयकुमार बड़ाल, दूसरे सुरेन्द्रनाथ मजुमदार, तीसरे देवेन्द्रनाथ सेन। हम उनकी कविता का उदाहरण भी दे चुके हैं, किन्तु अब हम कुछ ऐसे कवियों का उल्लेख करेंगे जिनको हम काल की दृष्टि से प्राक-अति आधुनिक युग के कवि कहेंगे। सच बात तो यह है वे रवीन्द्रनाथ के समसामयिक हैं, किन्तु उनका कार्यक्षेत्र मुख्यत: १९१४-१८ के महायुद्ध के पहिले के समय में ही रहा।

द्विजेन्द्रलाल राय

ऐसे कवियों में द्विजेन्द्रलाल राय का नाम सबसे प्रमुख है। एक समय था जब लोग उन्हें रवीन्द्रनाथ के समकक्ष कवि समझते थे, इसमें सन्देह नहीं वे एक उच्च-प्रतिभाशाली कवि तथा नाटककार थे। नाटक में तो कला की तथा निस्पृह सौन्दर्य सृष्टि की दृष्टि से न हो भावुकता की दृष्टि से वे अक्सर रवीन्द्रनाथ के आगे निकल रहे हैं। आज द्विजेन्द्रलाल की भाषाशैली को अपनाकर चलनेवाले बँगला साहित्य में बहुत कम होंगे, किन्तु रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से मुक्त शैलीकारों (*stylists*) में वे ही कदाचित् सबसे प्रमुख हैं। सच बात तो यह है रवीन्द्रनाथ की विश्वविस्तृत विपुल ख्याति के सामने द्विजेन्द्रलाल अच्छी तरह चमक नहीं पाये, दूसरी बात दुर्भाग्य की जो द्विजेन्द्रलाल की हुई वह यह थी कि वे आपेक्षिक रूप से

कम उम्र में ही उठ गये जिससे कि वे साहित्य में एक जीवित शक्ति नहीं रह सके। मुझे डर है द्विजेन्द्रलाल का मूल्य ठीक तरह से कूता नहीं गया है, शायद जब रवीन्द्र-युग थिरा जावे तो उनका असली मूल्य कूता जाय। मेरी राय में यदि रवीन्द्रनाथ बँगला में पैदा न होते तो द्विजेन्द्रलाल बँगला के सबसे बड़े कवि माने जाते, किन्तु उनकी कविता तथा गीत मुख्यतः उनके नाटकों में बिखरे हैं। द्विजेन्द्रलाल की हँसी के गाने मशहूर हैं। हम उनकी और तरह की कविता उदाहरण रूप में पेश न कर 'नन्दलाल' नामक एक हँसी का गाना अनुवाद के रूप में पेश करेंगे। यह उस ज़माने के और कुछ हद तक इस ज़माने के बंगाली मध्यवित्त श्रेणि के बाबू का सुन्दर चित्र है। मज़े की बात इस सम्बन्ध में यह है कि द्विजेन्द्रलाल वंकिमचन्द्र की तरह एक डिपटी मैजिस्ट्रेट थे, और इन्हीं दोनों लेखकों की रचनाओं से बंगाल ने स्वदेशभक्ति सीखी ?

नन्दलाल

नन्दलाल ने एक दफे एक भीषण प्रण कर ही डाला कि जैसे भी हो वह स्वदेश के लिये अपना प्राण रख देगा। सब ने कहा—हाँ-हाँ, हाँ-हाँ, नन्दलाल यह तुम क्या करते हो ?

नन्दलाल ने कहा—तो क्या हम हमेशा बैठे ही रहें, भला मैं न करूँ तो इस देश का उद्धार कौन करेगा ?

तब सब ने कहा—वाह रे नन्दलाल, वाह, वाह, वाह !

नन्द का भाई हैज़े से मरने लगा, उसे कोई देखनेवाला नहीं था। सब ने कहा—जाओ न, ज़रा भाई की सेवा तो करो......

नन्दलाल ने कहा—खैर भाई के लिये जान देना है तो मैं दे सकता हूं, लेकिन ऐसा अगर मैंने किया तो इस अभागे देश का क्या होगा ? इसलिये चारों तरफ सोचकर मैने देखा कि मेरा जीना बहुत ही ज़रूरी है।

तब सब ने कहा—अहा हा हा हा ! तुमने बावन रत्ती पाव तोले ठीक बात कही, ज़रूर।

नन्द ने एक दफे एक अखबार निकाला, उसने गद्य तथा पद्य में सब को गालियाँ देकर सब की नाक में दम कर दिया। चारों तरफ नन्द की धूम हो गई, नन्द मेहनत के मारे लकड़ी हो गया। वह जै गुना सोता था उसका दसगुना खाता था, क्या करता वह पूड़ी, मिठाई और पक्वानों के दोने पर दोने उड़ाने लगा। नन्द ने एक बार अपने अखबार में एक साहब को गालियाँ दीं। साहब ने आकर उसका गला पकड़ लिया तो वह चीं-चीं कर बोला—अजी यह क्या करते हो, कहीं मैं इस गला दबाने से मर गया तो इस देश का क्या होगा ? फिर जितने गज़ तक कहो उतने गज़ तक नाक ज़मीन पर रगड़ने के लिये या जो कहो सो करने के लिये तैयार हूँ।

तब सबने कहा— अरे वाह अरे वाह वाह !

नन्द फिर घर से बाहर नहीं जाता था, न मालूम कहाँ कब क्या हो जाय। गाड़ी पर नहीं चढ़ता था, न मालूम कब उलट जाय, नाव में भी नहीं चढ़ता था क्योंकि न मालूम हर साल कितनी डूबती हैं, रेल मे लड़ने का भय था, फिर पैदल चलने में साँप, कुत्ते तथा गाड़ी के नीचे दब जाने का डर था, इसलिये नन्दलाल अब लेटे ही लेटे जीने लगा। सबने कहा—अरे वाह ! अरे वाह ! नन्दलाल, हमेशा जीते रहो।

द्विजेन्द्रलाल ने अंग्रेज़ी में भी कुछ सुन्दर कवितायें लिखी हैं, उनमें और रवीन्द्रनाथ में बराबर साहित्यक विषयों को लेकर जो विवाद हुए हैं वे पढ़ने की चीज़ें हैं। रवीन्द्रनाथ को एक तरफ़ विपिनचन्द्र पाल ऐसे धुरन्धर विद्वान् तथा द्विजेन्द्रलाल ऐसे प्रतिभाशाली कवि से निपटना पड़ता था, रवीन्द्रनाथ को इस वादविवाद में असुविधा यह थी कि रवीन्द्रनाथ ब्राह्म सम्प्रदाय के होने के

कारण जनता उनकी 'प्रचार कार्यमूलक' रचनाओं के विरुद्ध सहज ही हो जाती थी। द्विजेन्द्रलाल ने 'भारतवर्ष' नामक मासिकपत्र चलाया जो अब तक सफलतापूर्वक चल रहा है। कवि द्विजेन्द्रलाल ने क़रीब-क़रीब उन सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा को दौड़ाया है जिनमें रवीन्द्रनाथ की कीर्ति है, हाँ, उन्होंने नाटक ही लिखे, उपन्यास न लिखे।

सत्येन्द्रनाथ दत्त

सत्येन्द्रनाथ दत्त की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें कुछ भी कृत्रिमता नहीं है, उनकी कविता कभी अलसाती हुई चाल से कभी द्रुत, कभी गरजती, कभी बरसती, कभी तड़पती हुई चली जाती है। रेड इण्डियनों की लोरी, चीनी कवि लो तु की कविता, जेनरल नोगी की एक आह; बल्कान, आईसलैंड की कविता को उन्होंने बँगला में रूपान्तर कर रक्खा है, किन्तु कवि यदि न बतावें तो किसी जगह मालूम भी न हो कि यह जो हम पढ़ रहे हैं और पढ़ते-पढ़ते मस्त होकर झूमने लगते हैं, क्रोध से बलबला उठते हैं या विषाद से मुरझा जाते हैं यह कोई अनुवाद है। विदेशी कविताओं को बँगला लिबास पहिनाने में सबसे सफल वे ही रहे। दुःख की बात है कि वे भी अकाल-मृत्यु के शिकार रहे। उनकी प्रतिभा कविताओं के अनुवाद के क्षेत्र में अद्वितीय होने पर भी वे केवल अनुवादक ही नहीं रहे। उनकी मौलिक कवित ओं की संख्या भी बहुत है। छन्द और भाषा उनके लिये इतनी अनायास थी कि उनकी कविता सीधे पाठक के कानों में पैठते ही हृदय में पैठ जाती है। बंगाली आत्मा के साथ उनकी इतनी तादात्म्यता थी कि इस क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ भी उनसे कहीं आगे बढ़ पायें है ऐसा नहीं कहा जा सकता। सत्येन्द्रनाथ दत्त की मृत्यु पर रवीन्द्र ने एक बहुत ही सुन्दर कविता लिखकर उनकी असामान्य प्रतिभा को दाद दिया है। उन्होंने लिखा—

वर्षार नवीन मेघ एलो धरणीर पूर्व द्वारे
बाजाइलो वज्रभेरी। हे कवि, दिवे ना साड़ा तारे
तोमार नवीन छन्दे ? आजिकार काजरी-गाथाय
झुलनेर दोला लागे डाले डाले पाताय पाताय
वर्षे वर्षे ए दोलाय दितो ताल तोमार जा वाणी
विद्युत-नाचन-गाने से आजि ललाटे कर हानि
विधवार वेशे केनो निःशब्दे लुटाय धूलिपरे ?

"वर्षा के नये बादल पृथिवी के पूर्व द्वार में आ गये, आकर उन्होंने वज्रभेरी बजाई। हे कवि तुम अपने नवीन छन्दों से उसको उत्तर न दोगे ? आज की कजली गाथाओं में पत्ते-पत्ते में तथा डालियों में झूलन का प्रभाव है, प्रति वर्ष इस झूलने को तुम्हारी जो वाणी विद्युत-नृत्य-गान से ताल देती थी वह आज विधवा के वेश में सिर धुनती हुई चुपचाप पड़ी हुई धूल पर क्यों लोट रही है ?"

केवल यही नहीं कवीन्द्र ने लिखा है सत्येद्रनाथ वंग भारती की वीणा में एक नवीन ही तार पहिनाने आये थे। भाषा, छन्द तथा नवीनता होते हुए भी सत्येन्द्रनाथ दत्त रवीन्द्रनाथ या द्विजेन्द्रलाल की तरह एक विश्व कवि इसलिये नहीं हो सके क्योंकि उनकी कविता में कोई दार्शनिकता की गहराई नहीं है। आज के युग की अच्छी कविता केवल सुललित भाषा या सावलील छन्द की बदौलत ही नहीं बन सकती, उसमें जीवन की सैकड़ों पहेलियों तथा समस्याओं पर रोशनी होनी चाहिये, कविता के जादू से ऐसा मालूम देना चाहिये जैसे उनका हल पा लिया जिसकी टोह थी। इस प्रकार की बातें सत्येन्द्रनाथ की बातों में नहीं हैं यद्यपि जैसा कि मैं कह चुका भाषा और छन्द उनके लिये वैसे ही अनायासलब्ध है जैसे मोर के लिये रंग की विचित्रता ।

यदि उनकी अकाल-मृत्यु न होती तो शायद उनकी प्रतिभापूर्ण

रूप से विकसित होती, और वे हमें एक विराटतर रूप में नज़र आते, उनकी एक छोटी-सी कविता का कुछ मूल, और पूरा अनुवाद देकर हम इस प्रसंग को खतम करते हैं

चम्पा

आमारे फुटिते होलो वसन्तेर अन्तिम निश्वासे
विषराण जखन विश्व निर्मम ग्रीष्मेर पदानत
रुद्र तपस्यार वने आध-त्रासे आधेक उल्लासे
एकाकी आसिते होलो—साहसिका अप्सरार मतो।

इत्यादि

"जब वसन्त की अन्तिम साँस चल रही थी तब मुझे पैदा होन पड़ा, उस समय विश्व निर्मम ग्रीष्म का पदानत था। साहसिक अप्सरा की तरह रुद्र तपस्या के वन में हमें आधे त्रास में तथा आधे उल्लास में आना पड़ा। शोषण-क्लिष्ट वन एकबार चर्चरा उठा उदास कुंज में क्लान्त कोकिल का स्वर एकबार सुनाई पड़ा, ऐसे समय में मैंने जन्म-यवनिका प्रान्त में अपने नये सुकुमार नेत्रों को खोलकर जलस्थल को देखा तो पाया कि वे शून्य, शुष्क, विह्वल जर्जर हैं। फिर भी विश्वास के वृन्त पर कँपता हुआ चम्प मैं निकल ही आया। कड़ी से कड़ी धूप में मैं नहीं गिरूँगा, भयंकर शराब की तरह जो रौद्र है जिसकी गर्मी से विश्व तड़पकर रह जाता है मैं उसे विधाता के आशीर्वाद से आसानी से पी जाता हूँ मैं धीरे से उषा का आतप्त कर पकड़कर निकल आया, देह में मूर्छा आती है, मन में मोह-सा छा जाता है, हर मुहूर्त यही अनुभव करता हूँ। फिर भी सूर्य की विभूति से मेरा सलोनापन ही बढ़त है। इसलिये मैं दिन के देवता को नमस्कार करता हूँ। मैं चम्प हूँ, सूर्य का सौरभ ही तो हूँ।"

सत्येन्द्रनाथ की इस कविता के अर्थ को यदि हम चम्पा नामक प्रसिद्ध पुष्प की जन्मकथा तक ही सीमित रक्खें तो यह एक मामूली कविता ही रहेगी, इसकी भाषा, कल्पना तथा शैली की हम चाहे कितनी भी प्रशंसा करें, किन्तु नहीं यही सब कुछ नहीं। "आधुनिक काव्यसाहित्य की एक धारा मनुष्य तथा प्रकृति को *allegorical*, *symbolical* और *mystical* दिशा से पकड़ने की चेष्टा है। इस धारा के प्रवर्तक वर्ड्सवर्थ तथा शैली हैं। *Allegorical*, *symbolical* तथा *mystical*, इनको ठीक-ठीक हिन्दी में समझाना मुश्किल है, फिर भी हम व्याख्या से इनका अर्थ स्पष्ट करने की चेष्टा करेंगे। पहिली बात तो यह है कि *allegory* भी रूपक है और *symbol* भी रूपक है किन्तु दोनों में यथेष्ट प्रभेद है। *Allegorical* श्रेणी के रूपक में एक साथ दो चीज़ें रहती हैं, एक तो बाहर जो कुछ स्थूल रूप से कहा जा रहा है वह, और दूसरी वह जिन बातों या भावों के वे रूपक हैं। स्थूल कहानी के रूप में भी हम उसका मज़ा उठाते हैं और जो कहानी आड़ में चल रही है उसका भी हम मज़ा उठाते हैं। जैसे स्पेंसर की *Færie Queen* या द्विजेन्द्रलाल राय का स्वप्नप्रयाण काव्य *Allegory* के उदाहरण हैं। *Strindberg* का *Lucky Pair* भी एक ऐसा दोमुंहा रूपक है। *Symbolical* रूपक नाट्य या काव्य में यह दोनों धारा रहने पर भी वहाँ वास्तव में स्थूल घटना को कोई प्रमुखता प्राप्त नहीं है, जो इस स्थूल घटना से परे दूसरी चीज़ है वही मुख्य है। जैसे रवीन्द्रनाथ का "डाकखाना" है, इसमें डाकखाना, डाकिया, मुखिया कोई सार्थकता नहीं रखते, इनके परे जो चीजें हैं वे ही इनमें मुख्य हैं।

इस पर यदि हम *allegorical* और *symbolical* का हिन्दी प्रतिशब्द करना चाहें तो हमें वस्तुरसप्रधान रूपक और भावरसप्रधान रूपक कहना पड़ेगा। प्राक-महायुद्ध (१६१४-१८) युग में यूरोपीय साहित्य में भावरसप्रधान रूपक की प्रधानता थी। मेटरलिङ्क,

ईटस (*Yeats*) के काव्य, इसी श्रेणी में आते हैं" सत्येन्द्रनाथ की इस 'चम्पा' कविता को हम जब रूपरसप्रधान रूपक के रूप में लेंगे तभी इसमें एक दूसरा ही आनन्द दिखलाई पड़ेगा। अजितकुमार चक्रवर्ती ने सत्येन्द्रनाथ के सम्बन्ध में फ्रेञ्च कवि *Paul Verlaine* के सम्बन्ध में जो कहा है कि *he paints with sound* वे ध्वनि से चित्र खींचते हैं उसीको दुहराया है यह ठीक ही है, सचमुच उनको छन्द तथा भाषा पर अद्भुत अधिकार था। "वर्लेन की तरह उनके छन्दों के स्पन्दन में अरूप जगत का स्पन्दन मानो पकड़ा गया है।"+

रवीन्द्रनाथ की कविताओं का बहुत कुछ अनुवाद हो सकता है, किन्तु सत्येन्द्रनाथ की कविता का अनुवाद होना क़रीब क़रीब असंभव है। ऐसे अबँगाली पाठक जो बँगला भाषा की आत्मा तक नहीं पहुँचे हैं वे उनकी कविता को समझ नहीं सकते।

इन्दिरा देवी और प्रियम्वदा देवी

इन्दिरा देवी तथा प्रियम्वदा देवी ने भी कुछ कवितायें लिखी हैं, किन्तु इन पर रवीन्दनाथ का प्रभाव इतना स्पष्ट है कि मालूम होता है हम रवीन्द्रनाथ को ही पढ़ रहे हैं। इन्दिरा देवी की निम्न-लिखित कविता भाव तथा भाषा में बिल्कुल रवीन्द्रनाथ की ही मालूम होती है। हम मूल का केवल एक *Stanza* ही उद्धृत करते हैं, जिन पाठकों ने रवीन्द्र काव्य का मूल में आस्वादन किया है वे इसको देखकर धोखे में आ जायेंगे।

हासिखेलार अभिनये अश्रुजले ढाकि
भेबेछिलाम एम्नि कोरे तोमाय देबो फाकि
बुके आमार जे सुर बाजे, गुञ्जरे जा मर्ममाझे

+देखो श्री अजितकुमार चक्रावर्ती प्रवासी, कार्तिक १३२५।

भेबेछिलाम सुखेर साजे राखबो तारे ढाकि।
हासिखेलार मिथ्याछले तोमाय दिये फाँकि।

"हँसीखेल के अभिनय में अश्रुजल ढककर मैंने सोचा था इसी प्रकार तुम्हें धोखा दे दूँगी। मैंने सोचा था कि मेरे हृदय में जो सुर बजता है तथा मर्मस्थल में जो कुछ गूँजता है उसे सुख के लिबास में ढक रक्खूँगी हँसी-खेल के अभिनय में तुम्हें धोखा देकर"

"प्रभात जब दुपहर में परिणत हो गया, तप्त वायु पैरों में अग्निकणा की तरह लगी, देह जब थकावट के मारे मिट्टी से छू-सी जाने लगी, आँखों में जितने ही आँसू झरते थे और मैं उन्हें गोपन करती थी, तभी तुमने मुझे गोद की लड़की की तरह गोद की ओर खींच लिया।"

"मैंने तो तुमसे नहीं पूछा कहाँ मेरा स्थान है, मैंने तुम्हारे पैरों पर आँसुओं की बाढ़ तो नहीं ला दी थी। बीरान मग में मैंने अपनी व्यथा निवेदनकर तुमसे सहायता तो नहीं माँगी थी, फिर भी तुमने कैसे कान डालकर मेरे हृदय की गहन बातों को तथा गोपन अभिमान को सुन लिया?"

"तुमने कैसे मेरी धोखेबाज़ी का पता पा लिया केवल यही बात मैंने तुमसे अबतक नहीं सुनी। न मालूम कब कौन-सा सुराग पाकर तुम्हारी हँसी की बाढ़ ने आकर मुझे हँसकर बहा लिया और इस प्रकार मेरी दुबिधा मिट गई। कैसे तुमने मेरी प्रतारणा पकड़ ली।"

प्रियम्वदा देवी की भी एक छोटी-सी कविता नीचे दी जाती है

आशातीत

तोमारे पारि न धरिते, पारि ना धरिते
मनेते मिशाये आपना करिते
ओरे आकाशेर आलो,

तोमाय पारि ना धरिते, पारिना धरिते
जतोई बासि ना भालो।
तोमाय पारि ना बाँधिते, पारि ना बाँधिते
नित्य नवीन छन्दे गाँथिते
ओरे मोर भालोबासा,
तोमाय पारि बाँधिते, भावे रूप दिते
तेमोन नाहिको भाषा

"हे आकाश की रोशनी मैं तुम्हें पकड़ नहीं पाती, पकड़ नहीं पाती, मन में मिलाकर अपना नहीं पाती। तुमको पकड़ नहीं पाती, पकड़ नहीं पाती चाहे जितना भी प्यार करूँ।"

"तुमको मैं बाँध नहीं पाती, बाँध नहीं पाती-नित्य नवीन छन्दों में गूथ नहीं पाती, हे मेरे प्यार ? तुमको मैं बाँध नहीं पाती, भाव को हाय रूप नहीं दे पाती, वैसी भाषा ही नहीं है।"

इन दोनों कवयित्रियों में से इन्दिरा देवी अकाल-मृत्यु से मर गई।

यतीन्द्र मोहन बागची

यतीन्द्र मोहन बागची रवीन्द्रनाथ के सफल शिष्यों में थे, वे उनके शिष्य ही रहे, किसी भी तरीके से अपने लिये स्वतन्त्र मार्ग का निर्माण नहीं कर पाये। भाषा पर उनका भी इतना अधिकार था कि उनके सम्बन्ध में भी सत्येन्द्रनाथ की तरह *He paints with sound* कहा जा सकता है, हाँ छन्द के मामले में वे सत्येन्द्र-नाथ से निकृष्ट रहे। उनकी कविताओं में भी कुछ रूपकयुक्त हैं, हम नीचे खेया-डिङि नामक एक कविता उद्धृत करते हैं, पाठक इसकी सुललित भाषा को देखें, रवीन्द्रनाथ की भाषा के साथ इसकी तुलना की जा सकती है—

पाटेर खेतेर भितर दिये घाटेर डिङा बाइ—
तोबु आमार हाटेर साथे कोनो बाँधना नाइ;
शिरा-ओठा फाटा होत हालेर गोड़ा धरि
आमि शुधु आपन मने एपार ओपार करि

इत्यादि

"मैं पाट के खेतों के भीतर से घाट की छोटी नाव खेता हूं, फिर भी हाट के साथ मेरा कोई बन्धन नहीं है। नस चमकते हुए फटे हाथों से मैं पतवार पकड़ता हूँ, मैं केवल अपने आप ही इस पार से उस पार करता रहता हूं।"

"तुम लोग खेत, फ़सल, बारिश, बादल, बाढ़ की बात सोचते रहते हो, भादों का धान कितना हिस्सा डूबा, कितना बचा, किन्तु इन बातों में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है, मैं केवल नियमानुसार घाट की नाव को खेता रहता हूँ।"

"मरी नदी में भाद्र भरी बाढ़ लेकर आता है, लाल पानी से दोनों किनारे एक से हो जाते हैं। बाँस से ज़मीन का पता नहीं लगता, न कोई थाह मिलती है, फिर भी दिन और रात में मुझे छुट्टी कब मिलती है।"

"अकस्मात् जिस दिन बाढ़ के पानी से खेत भर जाते हैं, धान के खेत में घुटना तक पानी होता है और पाट के खेत में गला भर पानी होता है, धान का केवल ऊपरी हिस्सा पानी पर हिलता रहता है उस समय मेरी नैया डगमग-डगमग उन्हीं के पास होकर निकलती है।"

"वे पगडंडियाँ कहाँ गईं और वे बाँध ही कहाँ गये, बबूल के पेड़ों की चौहद्दी को लेकर वे झगड़े ही कहाँ गये ? बन्धन हीन बाढ़ के सामने भला यह सब नियम क़ानून कहाँ चलते है, इसलिये असीम तैराकी करते हुए मैं नाव खेता रहता हूँ।"

"कमर तक पानी में खड़े होकर किसान हँसुआ चलाता है, धान अग्रभाग की सोंधी गन्ध हवा में फिरती रहती है। ललाई लिये हुए धान के अग्रभागों को पानी के नीचे नवाकर मेरी नाव उसीके बीच से चलती है।"

"धान की गड्डियों को मैं इस पार उस पार करता हूँ, पाट के ढेर को भी ढोता-मरता हूं, दिनरात कितने लोगों की कितनी ही बातें सुनता हूँ, मैं बैठकर मन-ही मन खेने का हिसाब लगाता रहता हूँ।"

"पानी के ऊपर से दुर-सा बिखराकर सूर्य उगता है, दिन का खेना खतमकर पश्चिम में डूब जाता है। बारहों महीने में एक भी दिन उसे छुट्टी नहीं है, उसीके साथ मैं भी घाट की नाव को खेता हूँ।"

"देशेर लोक" (देहाती) नामक कविता में देहाती दुनिया का अत्यन्त सच्चा चित्र खींचने के बाद वे कहते हैं—

अविचार अत्याचार भावे निज करमेर फल

नयनेर जल छाड़ा ताइ किछु थाके ना सम्वल

याने 'वह अविचार तथा अत्याचार को अपना ही कर्म-फल सोचता है, इसीलिये आँसुओं के सिवा उसका कोई सम्वल नहीं है।' कवि जो वर्णन करते हैं वह है तो सच, इस अभागे देश के ग़रीबों की यही मनोवृत्ति है, किन्तु एक क्रान्तिकारी कवि की तरह बजाय इसके कि वे इनको कविता का चाबुक मारकर उठाते वे उसकी इस भाग्यवादी मनोवृत्ति की सराहना करते है

एई देश—एई लोक—हासिओ ना शिक्षा-अभिमानी

धर्म जाने तार काछे सत्य मूल्य कार कतोखानि

याने 'ऐसा तो हमारा देहात है, और ये देहाती हैं, सुनकर हे शिक्षाभिमानी मत हँसना, धर्म जानता है कि उसके निकट किसकी कितनी सच्ची क़ीमत है।'

यह तो एक तरह से प्रतिक्रियावाद का प्रचार करना हुआ, यह तो वही बात हुई कि इस दुनिया में जमीन्दारों की ज़बर्दस्ती और ज़ुल्म सहो, इसके बदले में अगली दुनिया में हूरो-गिलमा मिलेंगे। मालूम होता है ऐसा लिखते समय कवि यतीन्द्रमोहन "एबार फिराओ मोरे' नामक रवीन्द्रनाथ की कविता के उस अंश को भूल गये

एई सब मूढ़ म्लान मुखे
दिते हबे भाषा, एई सब श्रन्त, शुष्क, भग्न बुके
ध्वनिया तुलिते हबे आशा, डाकिया बलिते हबे
मुहूर्त तुलिया शिर एकत्र दाँड़ाओ देखि सबे,
जार भये तुमि भीत से अन्यायी भीरू तोमा चेये
जखनि जागिबे तुमि तखनि से पलाइबे धेये +

रवीन्द्रनाथ भी *idealist* होने के नाते ऐसे मामलों में अन्त तक पूरी तरह निर्बाह नहीं पाते, किन्तु अक्सर उनकी प्रतिभा उनको इस प्रकार की गलती से बचा भी लेती है। यतीन्द्रमोहन की यह मनोवृत्ति हम उनकी "गौरी" नामक कविता को रवीन्द्रनाथ की उसी सन् में प्रकाशित 'येनास्याः पितरो जाता;' नामक कविता की तुलना करते हैं तो पाते हैं। दोनों में एक लड़की का विवाह उससे कहीं अधिक उम्र वाले बुड्ढे वर से होता है। दोनों विधवा हो जाती हैं, किन्तु दोनों में बड़ा प्रभेद है। यतीन्द्रमोहन की गौरी विधवा होती है, रवीन्द्रनाथ की मंजुलिका भी विधवा होती है। दोनों पितृसेवा तथा घर के कामकाज में मन लगाने की व्यर्थ चेष्टा करती हैं।

मंजुलिका का
दुःखे सुखे दिन हये जाय गत
स्रोतेर जले झरे पड़ा भेसे जावा फूलेर मतो
अवशेषे होलो

+ इसका अनुवाद रवीन्द्रनाथ के 'एबार फिराओ मोरे' में आ गया।

मंजुलिकार वयस भरा सोलो

याने "दुख सुख में उसके दिन बीत जाते थे, मानो वह कोई स्रोत के पानी में गिरा हुआ तथा बहा हुआ फूल थी। अन्त में मंजुलिका की उम्र सोलह हुई।"

और गौरी का क्या हुआ ?

काल कि कारेओ छाड़े

बछर बछर मेयेर वयस बाड़े।

आट थेके से षोलय पलो, बुझलो क्रमे निजे

अवस्था तार कि जे।

याने "समय किसी को भला छोड़ता है ? आठ से उसकी उम्र बढ़ते-बढ़ते सोलह वर्ष की हो गई। धीरे-धीरे वह समझ गई कि अपनी परिस्थिति क्या है।"

अपनी परिस्थिति समझने पर भी वह अन्त तक लाखों हिन्दू बालविधवाओं की तरह मूक रहकर अपने पिता की मूर्खता का अपने प्राण का तिल-तिल देकर प्रायश्चित्त करती है। वह एक "अनाघ्रात स्वर्ण-चम्पा" की तरह ही अपना जीवनलीला समाप्त करती है।

वर्षों तक रवीन्द्रनाथ की मंजुलिका भी इसी तरह रहती है। मंजुलिका की माँ एक दिन उसके पिता से कहती है—क्यों जी मंजु की शादी न कर दी जाय।

पिता हुक्के के नल से मुंह हटाकर कहता है—मुझे मर जाने दो फिर माँ और बेटी एक ही साइत में शादी कर लेना—और मुंह फेरकर अपना उपन्यास पढ़ने लगता है। बात यहीं खतम हो जाती है।

कुछ दिनों में माता मर जाती है। पिता कुछ दिन बीमार रहते हैं, बीमारी में पुलिन डाक्टर उन्हें देखता है। अच्छे वे हो जाते

हैं, किन्तु कुछ ही दिन में वे इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि बिना विवाह किये संसार-धर्म का निर्वाह नहीं हो सकता। तदनुसार वे विवाह करने जाते हैं किन्तु विवाह से लौटने के बाद वे देखते हैं कि मंजुलिका घर से भाग गई है, और पुलिन से शादी करने के बाद दोनों फ़रुखाबाद चले गये हैं।

ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है कि यतीन्द्रमोहन बागची अपने गुरु के पीछे रह गये हैं, यह तो मतामत की दृष्टि से हुआ, किन्तु कला के क्षेत्र में भी सम्पूर्ण रूप से वे उसी लीक पर चलते हैं जिस पर रवीन्द्रनाथ चल चुके हैं। हम कहीं भी उनमें कोई मौलिक धारा नहीं देखते। ऊपर जिन कविताओं की विषयवस्तु की तुलना की गई है उनके विषय में मज़े की बात यह है कि रवीन्द्रनाथ की कविता यतीन्द्रमोहन की कविता के ठीक एक महीना पहिले 'प्रवासी' में प्रकाशित हुई थी। क्या यह रवीन्द्रनाथ के उत्तर में लिखी गई थी ? यतीन्द्रमोहन की कविता की आखिरी पंक्तियों को देखकर यह सन्देह होता है कि शायद यह जवाब में लिखी गई थी। वे पंक्तियाँ यह हैं

तबु जेनो, गौरी एरि नाम—

रूपे गुणे नामेर मतन—चोखेर तृप्ति चित्तेर विश्राम।

"फिर भी जानना, गौरी इसी का नाम है, रूप तथा गुण में नाम की तरह ही है, आँखों के लिये तृप्ति और चित्त के लिये विश्राम है।

कालिदास राय

कालिदास राय भी रवीन्द्र-प्रभाव में पले हुए एक कवि हैं, सत्येन्द्रनाथ की तरह वे भाषा और छन्द के आचार्य नहीं जँचते, तथा रवीन्द्र-प्रभाव होते हुए भी उन्होंने किसी जगह भी रहस्यवाद को पास नहीं फटकने दिया। उनके विषयों में ही कुछ ऐसी मधुरता

होती है तथा विषय को वे प्रतिभा के साथ निभाते हैं कि उनकी कवितायें पठनीय तथा मौलिक-रसयुक्त हो जाती हैं। मध्यवित्त श्रेणी के छोटे-छोटे सुख-दुःखों को उन्होंने इस ख़ूबी से चित्रित किया है, कि देखते ही बनता है। "छात्रधारा" नामक कविता में उन्होंने शिक्षकों को इस भावुकता के साथ चित्रित किया है कि कोई भी सहृदय शिक्षक इसे पढ़कर आँसू नहीं रोक सकेगा। प्रत्येक समाज में ये शिक्षक कितने उपयोगी हैं, और लोग उन्हें कितना बेकार समझते हैं। इस कविता को पढ़ते-पढ़ते हमें चैकौफ के उस शिक्षक का स्मरण हो आया, जो मरते समय प्रलाप में कहता है "वालगा नदी वाल्डाई पहाड़ से निकलकर फलाने समुद्र में जाकर गिरती है।" करुण और हास्यरसका अद्‌भुत मिश्रण है, कहानी की पश्चाद्‌भूमि के कारण यह दृश्य और भी करुण हो जाता है। हम कालिदास राय की उस कविता का अनुवाद नीचे देते हैं—

छात्र धारा

प्रति वर्ष वे झुंड के झुंड इस विद्यामठ के नीचे आते हैं और वे कलरव करते हुए चले जाते हैं, कैशोर का किसलय पत्ते में याने यौवन के हरेपन के गौरव को प्राप्त करते हैं। उन्हें मैं प्यार करता हूँ, पास बुलाता हूँ, सबका नाम जान रखता हूँ, रोज़-रोज़ उनसे भेंट होती है। डाँट-फटकार बताता हूँ, एक पहर तक सीख भी देता हूँ, किन्तु फिर भी कुछ याद नहीं रहती। दो-चार दिन की यह मुलाक़ात, समुद्र के बालू पर जैसे रेखा, नई लहर आते ही पुछ जाती है। नन्हे पैरों के दाग नये-नये चरण-चिह्नों की ताड़नासे एक-से हो जाते हैं। वे यहाँ एकत्र तो होते हैं किन्तु जानते नहीं कहाँ जायेंगे, विद्यालय मानो एक सराय है। दो-चार-दस दिन एकत्र किसी कामको करते है, फिर मिलकर जैसे नीति-सार और कथा-माला गूथते हैं।

कभी रास्ते में भेंट हो जाती है तो कोई गुरु कहकर हाथ उठाकर नमस्कार करता है तो मैं हँसता हुआ कहता हूँ "जीते रहो, क्या काम काज हो रहा है ?"

सोचते-सोचते चलता हूँ, नाम तो याद नहीं आता, कितने दिन पहिले छात्र था ? याददाश्त को लेकर खींचातानी करता हूँ, कैशोर का उसका चेहरा याद आकर भी नहीं याद आता। आना-जाना रोज़ का होता है, बहुत दिनों तक भेंट होती है, फिर भी वे याद क्यों नहीं रहते ? व्यक्ति जाकर झुंड में मिल जाता है, गले में माला पहिन लेने पर प्रत्येक फूल को भला कौन याद रख सकता है ?

इस जीवन पर तोड़-फोड़ मचाकर उसे हरा तथा सरस करते हुए छात्रों की धारा बह जाती है, वह फेनिलता तथा उच्छ्वास तुच्छ हो जाता है और कलरव विलीन हो जाता है। जब मैं बारपार देखता हूँ तो मेरे मन को घेरकर कुछ म्लान चेहरे जग उठते है, जो कलरवमय महोत्सव है वह तो सब भूल जाते हैं, किन्तु ये म्लान मुख याद रह जाते हैं।

कोई तो भूख से म्लान है, कोई रोग से अधमरा है, थकावट से किसी की चितवन करुण हो रही है। कोई बेत के डर से कोठरी में छिपा रहता है, किसी की आँखें नींद से कड़वी हैं। कोई क्लास में बैठकर जँगले से बाहर की ओर देखता है, मानों कोई पिँजरे में बन्द चिड़िया हो। आस्मान में पतंग को देखकर उसका मन उड़ान भरने लगता है, उसके चेहरे पर विषाद की उत्कट छाया पड़ती है। कोई खेल के मैदान को यादकर सबक भूल जाता है, किसी को बुद्धि में ही बात नहीं आती; कोई तो घर को तथा स्नेहभरे भाई-बहिनों को यादकर बारबार घड़ी की ओर देखता है।

उदार वायु स्वास्थ्य तथा आयु लेकर पुकारती है, वह इस पुकार को बन्द कमरे में बैठकर सुनती है। हाथ में स्याही मुँह में स्याही ऐसा बच्चा वैसा ही मालूम देता है मानों नन्हा-सा चाँद

बादलों में ढँका हो, यह मुझे याद पड़ता है। और सब तो भूल चुका हूँ किन्तु यह सब भूल न सका। एकबार आँख मूँदते ही ये म्लान-मुखों की पंक्तियाँ मन को आकुल कर डालती हैं।

निरुपमा देवी

निरुपमा देवी बँगला में विशेष रूप से अपने उपन्यासों के कारण प्रसिद्ध थीं, किन्तु उन्होंने कुछ अच्छी कवितायें भी लिखी हैं। सच बात तो यह है कि बंगला के सभी सुकुमार साहित्य के लेखक साथ-साथ कवि भी होते हैं। शरत्चन्द आदि कुछ ऐसे औपन्यासिक बँगला भाषा में हुए हैं जिन्होंने कविता कभी नहीं लिखी, किन्तु वे अपवाद हैं न कि नियम। हम जब अति-आधुनिक बँगला काव्य पर आयेंगे तो दिखलायेंगे बँगला में अति आधुनिक कविता के जो प्रवर्तक हैं वे ही अति-आधुनिक गल्पकार भी हैं। निरुपमा देवी की 'तृण' नामक कविता का पहिला *Stanza* हम उद्धृत करते हैं, पाठक देखेंगे इसकी भाषा बड़ी संगीतमय है।

मोरा कचि कचि श्याम तृणदल
करि जीवनेर पथ सुश्यामल
उठि धरणीर प्राण फुँड़िया
रहि कठिनेर बुक जुड़िया
राखि घन मखमले मुड़िया
एइ कंकरमय धरातल।
मोरा कचि कचि श्याम तृणदल।

"हम हरी-हरी नरम घास के दल हैं, हम जीवन के पथ को हरा बनाते हैं। हम पृथिवी का प्राण फोड़कर उठते हैं, कठिन के हृदय को व्याप्त कर हम रहते हैं, हम इस कंकड़मय धरातल को घने मखमल से मोड़ रखते हैं। हम हैं हरी-हरी नरम घास के दल।"

यह कविता भी एक रूपक है। निरुपमा देवी पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव स्पष्ट है, किन्तु वह रहस्यवाद से सम्बन्ध नहीं रखतीं। फिर भी वह एक भाववादिनी (*idealist*) लेखिका थीं।

यतीन्द्रनाथ सेनगुप्त

यतीन्द्रनाथ सेनगुप्त की एक कविता 'हाट' का कुछ अंश लीजिये †

दूरे दूरे ग्राम दशबारोखानि
माझे एकखानि हाट
सन्ध्याय सेथा ज्वले ना प्रदीप
प्रभाते पड़े न झाँट।
वेचा केना सेरे विकाल-वेलाय
जे जाहार सबे घरे फिरे जाय
बकेर पाखाय आलोक लुकाय
छाड़ये पुबेर माठ
दूरे दूरे ग्रामे ज्वले उठे दीप—
आँधारेते थाके हाट।

'दूर-दूर पर दस बारह गाँव हैं और बीच में एक हाट लगता है, सन्ध्या के समय न तो वहाँ दीया जलता है न तो सबेरे झाड़ू ही लगता है। खरीदना-वेचना समाप्तकर सब अपने-अपने घर ही लौट जाते हैं, बगुले के पर पर चल कर रोशनी मानो पूर्व का मैदान पार कर छिप जाती है। दूर गाँवों में दीये जल उठते हैं, किन्तु हाट अँधेरे में ही रहता है।

दिवसेते सेथा कतो कोलाहल

---

† हाट माने वह गाँव का बाजार जो केवल हफ्ते में एक या दो दिन लगता है।

चेना अचेनार भिड़े,

कतो ना छिन्न चरणचिह्न

छड़ानो से ठाँई घिरे।

\+ + + +

दिवसे थाके ना कथार अन्त

चेना अचेनार भिड़े,

कतो के आसिलो, कतो बा आसिछे

कतो ना आसिबे हेथा

ओपारेर लोके नामाले पसरा

छुटे एपारेर क्रेता।

हिसाब नाहिरे एलो आर गेलो

कतो क्रेता-विक्रेता

'दिन भर यहाँ कितना कोलाहल रहता है, परिचित तथा अपरिचित की भीड़ रहती है। उस जगह को घेरकर न मालूम कितने लोगों के पदचिह्न बने हुए हैं। दिन में तो इस परिचित अपरिचित की भीड़ में बातों का अन्त नहीं रहता। कितने आये, कितने आ रहे हैं, कितने आयेंगे। उस पार के लोग यदि अपना सामान उतारें तो इस पार के क्रेता दौड़ पड़ते हैं। इसका कुछ हिसाब नहीं कि कितने क्रेता और विक्रेता आये।'

'नये सिरे से यह हाट हर बार बैठता-टूटता है, दिन रात नये यात्री हैं, इस नाटक का खेल जारी है। कोई तो जाते वक्त गाँठ में कुछ बाँध कर जाता है और कोई रोता है, उदार आकाश और मुक्त वायु में चिरकाल तक एक खेल चलता रहता है।

इस कविता पर रवीन्द्र-प्रभाव स्पष्ट है। रवीन्द्रनाथ एक वास्तववादी नहीं बल्कि भाववादी होने पर भी अपनी प्रतिभा की

विराट तूम्बी के कारण पानी के ऊपर ही रहते हैं, किन्तु उनके बहुत से चेलों में इस प्रतिभा की देन न होनेके कारण वे अक्सर रूपक तक ही रह जाते हैं याने रूप को गौण बनाकर कविता लिखते हैं। उसी का यह कविता एक उदाहरण है। हाट का वर्णन पढ़कर कि वहाँ साँझ का दीया भी नहीं जलता हमारे दिल में करुणा का उद्रेक होते न होते हम अनुभव करते हैं कि कवि कह रहे हैं खेत की लेकिन गा रहे हैं खलिहान की। इस दृष्टि से बँगला भाषा को अतुल शब्दों का ऐश्वर्य देने पर भी रवीन्द्रनाथ का प्रभाव बँगला कविता के आधुनिक होने में बाधक साबित हुई। जिसे देखो वही *Allegory, symbolism* तथा *mystism* की तरफ दौड़ा। सभी कविता में इस तरह बातें करने लगे मानों वे इस सृष्टि के पीछे जो रहस्य है उसके गुप्तगृह में उनका प्रवेश हो चुका है।

क़ाज़ी नज़रुलइस्लाम

क़ाज़ी नज़रुल बँगला के एक शक्तिशाली कवि है, उनकी कविता ने एक ज़माने में बँगला साहित्य में बड़ा तहलका मचाया था। एक धूमकेतु की तरह वे महायुद्ध के बाद बँगला साहित्य में अग्नि वीणा लेकर आये थे, विद्रोही के रूप में वे आये, किन्तु बाद को विश्लेषण करने पर मालूम हुआ कि उनकी अपनी कुछ विशेषता होने पर भी वे रवीन्द्रीय सौरमंडल के ही ज्योतिष्क हैं। हाँ, वे रवीन्द्रनाथ के उन एकलव्यों में नहीं हैं जो गुरु के ही इर्दगिर्द चक्कर काटते रहे, कहीं-कहीं क़ाजी में नवीनता की पुट है। क़ाज़ी नज़रुल भाषा पर ज़बर्दस्त अधिकार रखते हैं, उनकी कविता में ओज-गुण एक नई चीज़ है। उनके पहिले के कवियों में द्विजेन्द्रलाल राय में ही शायद उनसे ज़्यादा ओज है, किन्तु द्विजेन्द्रलाल का ओज भाव-प्रधान है, और क़ाज़ी नज़रुल का भाषा-प्रधान। उनकी 'विद्रोही' कविता की एक ज़माने में बड़ी धूम थी, उसमें बम, माइन, डिना-माइट की भरमार है। यह एक बहुत ही लम्बी कविता है। इनकी

किसी-किसी कविता में इज़राईल, इसराफील, सूर, क़यामत आदि इस्लामी पौराणिक-व्यक्ति, वस्तु तथा घटनाओं का उल्लेख है, किन्तु इससे उनकी कविता का खस्तापन बढ़ा है घटा नहीं। ख़ैर अक्सर वे ऐसी उपमा, उपमेयों को न लाकर बँगला कविता के अनुसार ही चलते हैं। उनकी सौ में निन्यानवे कविता में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे मालूम हो कि वे मुसलमान परिवार में पैदा हुए हैं। काज़ी नज़रुल बँगला के एक ऊँचे दर्जे के कवि हैं, उनका स्थान सत्येन्द्रनाथ दत्त से कम नहीं है। हम नीचे उनकी 'सिन्धु' नामक कविता का कुछ अंश उद्धृत करते हैं—

हे क्षुधित बन्धु मोर तृषित जलधि
एतो जल बुके तबो, तबु नाहि तृषार अवधि।
एतो नदी, उपनदी तव पदे करे आत्मदान,
बुभुक्षु, तोबु कि तव भरिलो ना प्राण।
दुरन्त गो महावाहु
ओगो राहु
तीन भाग ग्रसियाछ, एक भाग बाकी,
सुरा नाई—पात्र हाते काँपितेछे साकी।

"हे मेरे क्षुधित मित्र, तृषित जलधि, तुम्हारे हृदय में इतना जल है फिर भी प्यास की कुछ सीमा नहीं है। इतनी नदियाँ तथा उपनदियाँ तुम्हारे चरणों में आत्मदान करतीं है, किन्तु हे बुभुक्षु फिर भी क्या तुम्हारा दिल न भरा? हे दुरन्त महाबाहु हे राहु तुमनेतीन भाग तो ग्रस लिया अब एक भाग बाक़ी है। शराब नहीं रही, इसलिये हाथ में पात्र लेकर साक़ी काँपता है।"

समुद्र पर बहुतों ने लिखा है, किन्तु निम्न-लिखित पंक्तियों में फिर भी कुछ विशेष नई बात है—

मन्थन-मन्दार दिया दस्यु सुरासुर
मथिया लुठिया गेछे तव रत्नपुर,
हरियाछे उच्चैःश्रवा, तव लक्ष्मी, तव शशीप्रिया
तारा सब आछे आज सुखे स्वर्गे गिया।
करेछे लुन्ठन,
तोमार अमृत-सुधा मार जीवन तो।
सब गेछे आछे शुधु क्रन्दन कल्लोल,
आछे ज्वाला आछे स्मृति व्यथा-उतरोल।
उर्ध्वे शून्य, निम्ने शून्य, शून्य चारिधार
मध्ये काँदे वारिधार, सीमा हीन रिक्त हाहाकार
हे महान हे चिर बिरही
हे सिन्धु, हे वन्धु मोर, हे मोर विद्रोही
सुन्दर आमार,
नमस्कार।

"मन्दार रूपी मथनी से डाकू सुरासुरों ने तुम्हारे रत्न-पुर को मथकर लूट लिया है, तुम्हारा उच्चैः-श्रवा हर लिया, तुम्हारी लक्ष्मी हर ली, तुम्हारी शशी-प्रिया को भी हर लिया, वे सब तो स्वर्ग में जाकर सुख से हैं। उन्होंने तुम्हारी सुधा भी हर ली। सब चला गया, सिर्फ क्रन्दन-कल्लोल ही रह गया। केवल ज्वाला बाकी है, तथा व्यथा से उतावली स्मृति मौजूद है। ऊपर शून्य है नीचे शून्य है, चारों तरफ शून्य है, बीच में पानी की धारा रिक्त हाहाकार बनकर रोती है। हे महान्, हे चिर विरही समुद्र, हे मेरे मित्र, हे मेरे सुन्दर विद्रोही तुम्हे नमस्कार है।"

क़ाज़ी नज़रूल की कविता की यह विशेपता मालूम देती है कि

उसमें गति भी है, ओज भी है किन्तु कोई उद्देश्य नहीं। उनकी विद्रोही कविता इसी प्रकार की है। काजी नजरूल विद्रोही जरूर हैं, किन्तु उनके मन में विद्रोह का कोई स्पष्ट उद्देश्य न होने के कारण उनका विद्रोह अक्सर केवल साहित्यिक पैर फटफटाना मात्र रह जाता है। नजरूल की एक कविता है "देखवो एबार जगतटाके" याने "अब दुनिया देखूँगा"। इस कविता में कवि कहते हैं कि वे अब घर में बन्द नहीं रहेंगे, वे अब दुनिया देखेंगे "कैसे वीर मल्लाह डूबकर समुद्र के अन्दर से मोती ले आता है, कैसे साहसी लोग दूर आकाश की ओर उड़ जाते हैं; कैसे और काहे के नशे में लाखों की तदाद में लोग मरते हैं, किसके अभियान में लोग हिमालय की चूड़ा में जाना चाहते हैं" इत्यादि कवि जानना चाहते हैं। वे अब पिंजरे में बन्द नहीं रहना चाहते, वे इन सब बातों को दुनिया घूमकर देखना चाहते हैं। वे पाताल फाड़कर नीचे उतरना चाहते हैं तथा फोड़कर आकाश में उठना चाहते हैं। वे विश्वजगत को अपनी ही मुट्ठि में भरकर देखना चाहते हैं। इतना होने पर भी सच बात तो यह है कि यह समझ में नहीं आता कि कवि चाहते क्या हैं' नतीजा यह है कि ऐसी कविता का या तो आध्यात्मिक या छायावादी रहस्यवादी अर्थ लेना पड़ेगा।

मैं समझता हूँ इस अस्पष्टता के लिये नजरूल को दोषी ठहराना ठीक नहीं होगा। सचमुच बात तो यह है कि नजरूल तथा उनके साथी विद्रोह करना चाहते हैं, किन्तु क्या करना चाहते हैं यह इन्हें पता नहीं। तोड़ना, फोड़ना, फाड़ना शब्द के अधिक इस्तेमाल से ही कोई क्रान्तिकारी या आधुनिक नहीं हो सकता।

राधाचरण चक्रवर्ती

राधाचरण चक्रवर्ती रावीन्द्रीय मंडल के एक कवि हैं, उनकी सभी कविता रहस्यवाद का पुट लिये हुए होती है। एक कविता लीजिये—

आकाशेर मेघरन्ध्रे अन्धकारे तुमि चेये थाको
तारा होये।
आँखिर पलकहारा होये
तुमि मोरे डाको
आभासे इङ्गिते शत डाके—
आमि थाकि क्षुद्रतार सीमा नागपाशे
धरणीर एक पाशे
बाँधा शत पाके
चारिदि के स्वार्थ-कोलाहल
उच्छृङ्खल
संग्राम संघात
घात प्रतिघात
तोबु माझे माझे आसे काने
तबो डाक—उदास करिया दय प्राणे।

"आकाश के बादलों के छेद से अन्धकार तुम मेरी ओर नक्षत्र होकर देखते हो, पलक नहीं मारते। तुम मुझे पुकारते हो, आभास से, इशारे से, सैकड़ों पुकार से। मैं क्षुद्रता की सीमा नागपाश में सैकड़ों बन्धन से बँधा हुआ रहता हूँ। चारों तरफ स्वार्थ का कोलाहल है, उच्छृङ्खल है, संग्राम संघात है, घात प्रतिघात है। फिर भी बीच-बीच में तुम्हारी पुकार आ ही जाती है, तुम्हारी पुकार प्राणों को उदास कर देती है।

चारिदिके कामना-अप्सरी
खेले लुकोचुरि-खेला करतले मोर दुरि चक्षुचेपे धरि
दृष्टि रोध करि;

तबु माझे माझे जेनो अङ्गुलिर फाँके
आँखिर किरण तबो आसि मोर लागे
नयनेर आगे
आलोहित रागे

"चारों तरफ़ कामना-अप्सरी मेरी दोनों आँखों को बन्दकर मुझसे लुकछिपौवल खेलती है। मेरी दृष्टि रुद्धकर, फिर भी बीच-बीच में उँगलियों के बीच से तुम्हारी आँख की किरणें जैसे मुझे आँखों के सामने लाल-लाल दिखाई दे जाती है।"

जोब जाबो, तोबु आमि जाबो
हे अनन्त बलो बलो आमि तोमा पावो

\+ + + + +

हे असीम तोमार माझारे भेसे जाबो चुपे चुपे

"जाऊँगा-जाऊँगा फिर भी मैं जाऊँगा, हे अनन्त, तुम कह भर तो दो तुम मुझे मिलोगे।

सुधाकान्त राय चौधुरी

सुधाकान्त राय चौधुरी कोई बड़े कवि नहीं हैं, किन्तु फिर भी उनकी एक कविता 'मुक्तिर खेला' हम पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं। इसमें जेल में रहनेवाले एक क़ैदी के गहरे भाव चित्रित किये गये हैं

रुद्ध मम चित्त नित्य काँदे बन्दीशाले
तोबु वातायन-द्वार-पथे नव प्राते
जे आलोक जागे पूर्वदिगन्तेर भाले
आभाखानि तार लागे आसि मोर माथे।
पिंजरे राखिया मोरे संकीर्ण सीमाय,

केनो सुदूरेर पाने दृष्टि मोर टानो,
केनो चित्तपाखि जेथा क्लान्ति ते झिमाय
अरण्येर विहगेर गीतध्वनि आनो।

इत्यादि

"वन्दीशाला में मेरा रुद्धचित्त नित्य रोता है, फिर भी रोज़ सबेरे जँगले के रास्ते से जो रोशनी पूर्व क्षितिज के ललाट में जागती है उसकी आभा आकर मेरे सिर पर लगती है। मुझे संकीर्ण सीमा में पिँजरे में रखकर क्यों सुदूर की ओर मेरी दृष्टि को खींचकर तरसाते हो? जहाँ मेरी मन-चिड़िया थकावट से सोती-सी है, वहाँ जंगली चिड़ियोंकी गीतध्वनि क्यों लाते हो? मैं तो पथरीले दुर्ग में बन्दी हूँ, फिर मेरे श्रावण के द्वार में बारबार झर्ने का उद्दाम गीत की पुकार से खटखटाते हो, और इस प्रकार हृदय में दुरन्त दुर्वार मुक्ति का वेग ला देते हो?"

जेल पर बहुत-सी कवितायें लिखी जा चुकी हैं किन्तु इसमें क़ैदी के अन्तर की गहरी वेदना को भाषा दी गई है।

एक और कवि की कविता देकर हम इस दौर को समाप्त करते हैं।

सुरेन्द्रनाथ मैत्र

सुरेन्द्रनाथ मैत्र की इस कविता का नाम 'वात्सल्य' है, भाषा तथा छन्द में यह रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से ओतप्रोत होते हुए भी इसकी कल्पना में नवीनता है। हम केवल पहिला *stanza* उद्धृत करेंगे, बाक़ी का अनुवाद भर देंगे।

खेला घरे शिशु खेला करे
धूलिर फाटल-मेघे जेनो चाँदिमार सुधा झरे
हासि-ज्योत्स्ना भरा मुख तार

सेई आलो सेई हासि जननीर स्नेह नीलिमार
अतल जलधि-वक्षे आलोकेर शुभ्र आलिपना
आँकिछे कत ना
उच्छल तरङ्ग शिरे शिरे
आनन्देर सुमन्द समीरे।

"खेल के घर में बच्चा खेलता है, धूल के फटे हुए बादल में जैसे चन्द्रमा की सुधा टपक रही है। उसके चेहरे पर हँसी की ज्योत्स्ना है। यह रोशनी यह ज्योत्स्ना जननी के स्नेह-नील अतल जलधि के समान वक्षस्थल में कितनी ही तरह के शुभ्र चित्रण की सृष्टि करता है। उसके चंचल तरंगों के ऊपर-ऊपर आनन्द की सुमन्द हवा में।"

"दूर से कवि अकेला बैठकर इकटक देखता है इकटक देखता रहता है कि धरणी के धूल पर यह शिशु-शशी कैसा-कैसा खेल खेलता रहता है, और साथ ही साथ देखता रहता है स्नेह के सागर में किस प्रकार की लहरें उफनती हैं। ज्योत्स्ना रूपी अमृत में वह गलकर रह जाता है। ज़रा सी वह धूल लिपटी हुई देह समुद्र के भरे स्नेह को दीप्त करता है।"

———

४

अति—आधुनिक कविता

कहाँ पर आधुनिक साहित्य का अन्त होकर अति-आधुनिक युग का प्रारंभ होता है यह कहना बड़ा कठिन है। फिर यूरोपीय साहित्य में जिसे हम आधुनिक कहेंगे उसीकी बहुत कुछ हद तक हमें बँगला में कई कारणों से अति-आधुनिक कहकर परिभाषा करनी पड़ रही है। बँगला में इस प्रकार परिभाषा होने में गड़बड़ी का कारण यह हो रहा है कि रवीन्द्रनाथ की रचना का एक अंश तो यूरोपीय अर्थों में भी आधुनिक है, किन्तु बाकी के लिये हम यह बात नहीं कह सकते, साथ ही उनको हम प्राचीन या अन्य किसी पर्याय में नहीं डाल सकते। सुप्रसिद्ध समालोचक अजितकुमार चक्रवर्ती ने ठीक ही लिखा है कि विश्वमानविकता में रवीन्द्रनाथ बालाजाक, ब्रौनिङ, हूगो आदि किसी लेखक से उतरकर नहीं हैं, किन्तु उनकी चरित्रसृष्टि में न तो वह विचित्रता है, न वास्तविकता, न अभिज्ञता का स्तरपर्याय, न उत्थान-पतन की लहरें, न पापपुण्य का घातप्रतिघात। ये ही विशेतायें हैं जिनसे यूरोपीय साहित्य तरंगित, फेनायित तथा बिक्षुब्ध बज रहा है। इसलिये कविता विशेष-कर गीतिकविता में जहां वस्तु से कोई वास्ता नहीं रवीन्द्रनाथ अतुलनीय हैं। इसलिये कहानियों में भी जहाँ घटना से कहीं बढ़-कर महत्त्वपूर्ण घटना का आन्तरिक सुर होता है वे अपना सानी नहीं रखते। रूपक नाट्य में भी रवीन्द्रनाथ को इसी कारण सफलता मिली है।

आधुनिकता की त्रिधारा

अवश्य इस युग में मौजूद रहने के कारण आज के जीवन की

सैकड़ों समस्यायें रवीन्द्रनाथ की अनुभूतिशील वीणा को बार-बार छू गई है। जिन कवियों को हमने रवीन्द्रनाथ के बाद गिनाया है वे भी इन विश्वव्यापी समस्याओं के महाप्लावन से न बच सके, किन्तु फिर भी उन पर उनका विशेष प्रभाव पड़ा यह कहने के लिये कोई कारण नहीं। बात यह है "बँगला साहित्य में अब तक मुख्यत: *idealism* (भाववाद) का ही बोलबाला रहा, वंकिम की कल्पना में एक बड़े *ideal* का *sentiment* है, रवीन्द्रनाथ की कल्पना में *Real* (वस्तु) तथा *ideal* (भाव) की एक समन्वयचेष्टा है, और जिनको हम भारतीयऔपन्यासिकों में सबसे ज्यादा प्रगतिशील तथा क्रान्तिकारी समझते हैं वे भी विश्लेषण करने पर वस्तुवादी (*realist*) नहीं पाये जाते, बल्कि उनके उपन्यासों में *Real* (वास्तविकता) का *emotional* (संवेदनमय इसलिये आत्मतान्त्रिक या *subjective*) रूप मिलेगा।"+ मोहितलाल ने इसके बाद लिखा " बंकिमचन्द्र की कल्पना में वास्तविकता (*real*) एक बाधा के रूप नहीं थी, उनकी कल्पना थी सम्पूर्ण निरंकुश और निरापद; रवीन्द्रनाथ की कल्पना में वास्तविकता रूपान्तरित हो गई है, मानो वास्तविकता की वास्तविकता ही लुप्त हो गई है शरत्-चन्द्र की काल्पन्य-वास्तविकता की समस्या जटिल हो चुकी है, वास्त-विकता के लिये एक प्रबल आवेग की सृष्टि हुई है। इस त्रिधारा से शायद बँगला साहित्य का वस्तुवाद खतम हो गया। इसके आगे जो साहित्य होगा उसमें वास्तविकता के साथ वास्तविक रूप से निपटना पड़ेगा।"

कल जो आधुनिक था आज वह

आधुनिक शब्द एक तुलनात्मक शब्द है, जो चीज़ कल आधुनिक थी आज उसका प्राचीन कहलाना स्वाभाविक है। इसमें

+ देखो आधुनिक बँगला साहित्य पृ २७०

रोने, पीटने, लड़ने या सिर धुनने की ज़रूरत नहीं। सच बात तो यह है इसमें हमें खुशी ही मनानी चाहिये। "कभो उन्नीसवीं सदी भी तो आधुनिक थी, किन्तु बीसवीं सदी में उसकी वह आधुनिकता मान्य कैसे हो सकती है? फलस्वरूप जो भी प्राचीन संस्कार युगधर्म के पैरों में बेड़ी डालकर उसकी गति को कुंठित करता है उसे कुसंस्कार आख्या दी जा सकती है, और गति के पथ को रुद्ध करने के कारण वह निन्दनीय तथा बर्जनीय है। हमारे मन की पट-भूमि में विभिन्न भँवरों के ज़रिये से युग-युग तक जो कुसंस्कार पुंजीभूत हुए हैं उनके प्रभाव से छुटकारा पाना कठिन हो जाता है। सीमित संस्कारों के कुहरे में ढके हुए साहित्यदेव का जो विकृत रूप हमारी आँखों के सामने आता है उसीकी पूजा में हम तन्मय हो जाते हैं, इस प्रकार हम अपनी मोहतन्द्रा पर शान्त-समाहित अवस्था समझने का भ्रम कर डालते हैं।" (१)

आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य में उसके ध्येय, आधेय तथा रूप में परिवर्तन होना अनिवार्य है। फिर भी इस अनिवार्य भवितव्यता को कभी के क्रान्तिकारी और उस समय के बड़े-बूढ़ों ने रोकना चाहा है, फलस्वरूप एक संघर्ष, तूफान तथा बातों की मारकाट शुरू हो गई है। यह एक अजीब बात है कि जिस क्रान्तिकारित्व या विचार स्वातंत्र्य की बदौलत वे साहित्य में एक नये युग के प्रवर्तक हुए, उसीका अवलम्बनकर जब दूसरे उनसे भी आगे जाना चाहते हैं तो वे विधिनिषेधों की एक चीन की दीवार खड़ीकर उन्हें रोकते हैं, और जब इस पर भी ये नये मतवाले नहीं मानते तो उन्हें तरह-तरह से गालियाँ दी जाती हैं। "यहाँ तक कि लेख के चरित्र को छोड़कर लेखक के चरित्र पर हमले किये जाते हैं।" एक नवीनपंथी बंगाली समालोचक ने लिखा है—

"राजा राममोहन राय, केशव चन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

---

(१) देखो प्रेमेन्द्र विश्वास—आधुनिक बाला गल्प

ये भी एक ज़माने में अर्वाचीन समझे जाते थे। आधुनिकता के अपराध में उस ज़माने में उनके विरुद्ध निन्दा होती थी, उनको बहुत से सामाजिक निर्यातन सहने पड़े। वंकिमचन्द्र, माईकेल, नवीनचन्द्र आदि को सामाजिक निर्यातन का सामना करना पड़ा था किन्तु निर्यातित होने का दुःख एक है और प्राचीन होने का दुःख दूसरा है। अभी हाल में रवीन्द्रनाथ के सम्बन्ध में एक ऐसी ही शोकप्रद घटना घटी है। जो नारा दिया जा रहा है वह ग़लत है। रवि बाबू का इस बात पर अभिमान होना स्वाभाविक है कि अब उनका नाम लोग नवीनों के बही से काट दे रहे हैं, इस अभिमान को हम समझते हैं किन्तु रवीन्द्रनाथ के चेलों के पुनर्जन्म का उत्सव हम नहीं समझते। रवि बाबू ने नवीन का विजयगान किया है, उसके लिये उनको गालियाँ भी यथेष्ट दी गई, किन्तु आज यदि उन्हीं को प्राचीनता के शिविर में ढकेल दिया जाय तभी तो हम यह कह सकते हैं कि नवीनता की पुकार सत्य है। बड़े भारी आधुनिक तथा विद्रोही शरत्चन्द्र प्राचीन की श्रेणी में जाकर मरे यह तो उनके विप्रदास की परिणति से ही स्पष्ट है। फिर भी इसमें रोने-धोने की बात क्या है यह हमारी समझ में नहीं आती। यदि प्राचीन ही सब जगह पर अपना अधिकार रक्खें तो नूतन को जगह कहाँ मिलेगी। फिर तो हमें सबसे पहिले जीवविज्ञान को झूठा क़रार देना पड़ेगा यदि पिता ही चिरकाल तक मौजूद रहे तो सन्तान की ज़रूरत क्या है? फिर यदि पुत्र हुबहू पिता की ही तरह नहीं हुआ तो इस पर हम डाढ़ मार रोने क्यों लगेंगे। फिर मनुष्यावतार का क्यों मीनावतार को ही पानी चढ़ाने से काम चल जाता।"

अति-आधुनिक साहित्य पर आक्षेप

अति-आधुनिक साहित्य पर तरह-तरह के आक्षेप किये गये हैं। कहा जाता है कि अति आधुनिक साहित्य छाग-साहित्य है, प्राचीन साहित्य रामायण है तो यह कामायण है। अति-आधुनिक कविता

को कामो-दीपक तथा शरीर की पूजा करनेवाली वासनाकलुषित भी कहा गया है। मैं समझता हूँ यह एक बिल्कुल झूठी तथा बेबुनियाद बात है। बाईबल, रामायण, महाभारत से आज की कविता अधिक अश्लील है यह कहना ग़लत है। बँगला में जो कृत्तिवास की रामायण या काशीरामदास का महाभारत है उन्हें कोई भी *moralist* अपने लड़के को दे नहीं सकता। सच बात तो यह है कि आज की अश्लीलता में कला का पुट है, किन्तु प्राचीनों में तो केवल नग्न, वीभत्स, अश्लीलता है। रहा यह कि अति-आधुनिक साहित्य में शरीर को उसका उचित स्थान दिया गया है, हाँ कहीं-कहीं कुछ अति भी हुई है यह मैं मानता हूँ, और यह स्वाभाविक ही है! आधुनिकतम मनोविश्लेषण शरीर और मन की एकमेवाद्वितीयता की ही दलील को पुष्ट करता है। ऐसी हालत में शरीर पर से आँख हटाकर कल्पना की धूमिल रंगीन धरा पर विचरण करना कभी वांछनीय नहीं हो सकता। अवश्य ही दुर्नीति का प्रचार करना अति-आधुनिक साहित्य का लक्ष्य नहीं हो सकता और न है। हाँ, जिन बातों को अब तक हमारे समाज के नीतिवान साहित्यिकों ने केवल अस्वीकार करके ही उड़ा देना चाहा था, किन्तु फिर भी जो थीं, और जिनका नतीजा बराबर हमारे सामने आता रहता था, उनको अति-आधुनिक साहित्य ने सब के सामने लाकर रख दिया है। यही हमारे बुजुर्गों के निकट दुर्नीति है। अति-आधुनिक साहित्य को कुछ बंगाली समालोचकों ने *bathroom literature* भी कहा है, याने गुसलखाना साहित्य। इस आक्षेप का उत्तर यह है कि अति-आधुनिक अपने गुसलखाने को हमारे प्राचीनों के रसोईखाने से अधिक साफ़-सुथरा रखते हैं इसलिये यह कोई विशेष गाली नहीं है।

सच बात तो यह है यह सब बातें इसलिये उड़ाई जाती हैं कि प्राचीन अपनी गद्दी पर क़ायम रह सके, और यह विरोध-प्रचार है।

विधाता की सृष्टि बनाम कलाकार की

प्राचीनों की तरफ से वकालत करते हुए कवि रवीन्द्र कहते हैं—"विधाता की सृष्टि में जो पुनरुक्ति है वही चिरसत्य है। प्राचीन को लेकर ही विधाता चिरकाल से इस पृथिवी में इन्द्रजाल की रचना करते आये हैं, इस पर यदि उन्हें लज्जा न हो तो......

बीच ही में बात काटकर नवीन कहता है—"विधाता को भले ही लज्जा न हो, किन्तु मनुष्य को लज्जा है। मनुष्य का साहित्य, शिल्पकला, भास्कर्य, हमेशा नया ही रूप लेता रहा है। प्रागैतिहासिक युग में एक चमेली जैसे फूलती थी आज भी वैसे ही फूलती है, परन्तु फिर भी विधाता की कला में बट्टा नहीं लगता किन्तु उस युग का मनुष्य जैसी तस्वीरें खींचता था आज भी यदि वह वैसी ही खींचे तो आज उसके लिये लज्जा की कोई सीमा न रहे, प्रतिदिन नई सृष्टि करने में ही उसकी कला की सार्थकता है।"

नवीन प्राचीन का कितना ऋणी

हमारे बुजुर्ग जब सभी बातों में हार जाते हैं तो वे कहते हैं आखिर यह तुम्हारा अति-आधुनिक साहित्य आया कहाँ से, आखिर तुम्हारे बाप तो हम ही हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऋण है, किन्तु ऋण कितना ? फिर यदि अब के साहित्यिक उन्नीसवीं शताब्दी के साहित्य के ऋणी हैं तो क्या वे किसी और के ऋणी नहीं हैं। कविवर कहते हैं बाल्मीकि आये थे तभी उनका आना संभव हुआ, नवीन यहाँ पर तड़ से पूछ बैठता है बाल्मीकि का आना किसकी बदौलत संभव हुआ। फिर नवीन स्वयं ही कहता है "बच्चा माँ से चलना सीखता है, किन्तु चलता है वह अपने ही ज़ोर से; जिस रहस्य की खान से आदिम कवि ने प्रेरणा पाई थी उसीसे अति-आधुनिक प्रतिभाशाली कवि भी प्रेरणा पाता है। हम अतीत काल के गर्भ से आये हैं इसे हम अस्वीकार नहीं करते,

किन्तु माँ के गर्भ से बेटा निकला है केवल इसी तत्त्व पर यदि मा बेटे को हमेशा चलाना चाहे तो वह एक विभ्राट का रूप धारण करे। भूतकाल मनुष्य की अवचेतना (*subconscious*) में रहे तो ठीक है, यही उसका यथार्थ स्थान है किन्तु इसके बजाय कि पर्दे के पीछे से चुपचाप अपना भी प्रभाव डाले वह हमारी सारी चेतना को ही आच्छन्न कर ले यह एक भयंकर बात ही नहीं दैवदुर्विपाक होगा। यदि रवीन्द्रनाथ को समझने के लिये ईश्वर गुप्त, और ईश्वर गुप्त को समझने के लिये काशीराम दास को और काशीराम दास को समझने के लिये विद्यापति और जयदेव को, फिर इनको समझने के लिये अशोक की शिलालिपि पढ़नी पड़े तो बस हो चुका" †

साहित्य में चिरन्तन सत्य !

साहित्य में तथा सर्वत्र इस बात के लिये अधिकतर मारकाट हुई कि गद्दीदारों ने हमेशा मुहम्मद की तरह यह दावा किया कि आखिरी पैगम्बर वे ही हैं, उन्होंने जिस सत्य को पा लिया वही सत्य का चरम तथा परम विकास है। यही तो गलती है, यदि उनके समय में विकास होता था तो क्या वजह है कि उसके बाद विकास न होगा। इस दावे के कारण ही नवीन और प्राचीन में बराबर साहित्य में तुमुल संग्राम हुआ है। शायद यह नवीन और प्राचीन, गद्दीदार और गद्दी के अधिकारी का संग्राम ही चिरन्तन सत्य है।

मध्यवित श्रेणी का नहीं जनता का साहित्य

हम कई बार लिख चुके हैं कि वंकिम कहिये; माइकेल कहिये द्विजेन्द्रलाल कहिये, रवीन्द्र कहिये इनमें से सभी मध्यवित श्रेणी के साहित्य के रचयिता थे। उन्हीं के *sentiments*, *ideal* या *reality*

† यह नवीन श्री प्रेमेन्द्र विश्वास है

ही उनका उपजीव्य था। एक नवीन साहित्यिक की भाषा में सुनिये "साहित्य अब तक धनी तथा विलासियों की जयगाथा से परिपूर्ण था। अब राजे नवाबो प्रशस्ति तथा कहानी से ही उसका काम चलता था। यद्यपि आज जनता का भी वहाँ स्थान होने लगा है, किन्तु इतने ही से हम सन्तुष्ट नहीं हो सकते, हमें इनसे भी नीचे उतरकर जहाँ अपमान और अत्याचार हो रहा है उन सर्वहाराओं (*proletariat*) में जाना पड़ेगा। आज दुनिया के कारखाने और ज़मीनों के मालिक एक तरफ़ है, वे हैं पूँजीपति और ताल्लुकेदार दूसरी तरफ हैं किसान और मज़दूर, ये सर्वहारा हैं। यह श्रेणी-संग्राम आज बहुत ही स्पष्ट है और नज़दीकी चीज़ है। कुछ नहीं यदि जनसंख्या का अध्ययन किया जाय तो ये ही देश, ये ही जाति हैं। साहित्य का काम अब यह होगा कि वह इन किसान-मज़दूरों की सामाजिक तथा राष्ट्रीय चेतना को जगावे। वही साहित्य वास्तव में राष्ट्रीय साहित्य होगा।" नवीन युग के नवीन समालोचक फिर कहते हैं—"यह जो साहित्य है, इसमें संभव है त्रुटियाँ हों, रहें। युग-युगान्तर के बन्धन को एक दिन में तोड़ने चले हैं, कुछ तो टूटेगा ही। सीमित संस्कारों के संकीर्ण दायरे में शान्ति भी है शृंखला भी किन्तु वहाँ वह जीवन की चंचलता ही कहाँ और मुक्ति का आनन्द कहाँ ?"

वास्तविक परिस्थिति

ऊपर जो कुछ कहा गया वह समालोचना मात्र है, सच बात तो यह है अति-आधुनिक बँगला साहित्य अभी तैयार हो रहा है। इसमें सन्देह नहीं वह नई चीज़ है। एक ज़माने में अर्थात् बीस-पचीस वर्ष पहिले रवीन्द्रनाथ को अधिक से अधिक अपनाना ही बँगला लेखकों तथा कवियों का आदर्श था, किन्तु अब उनसे अधिक से अधिक अलग हटना ही मानों बहुतों का आदर्श हो रहा है। इस प्रयास में कुछ लोगों ने अति कर दी है, नतीजा यह है वे जिस

बात से बचना चाहते थे वे उसीके शिकार हो गये हैं। वे कृत्रिम हो गये, तथा अवास्तविक भी हो गये। फिर भी यह एक नवीनता है। बँगला का अति-आधुनिक गद्य तथा पद्य साहित्य धीरे-धीरे जनता का साहित्य शायद बने, किन्तु अभी वह जनता का साहित्य नहीं है। ठीक-ठीक कहा जाय तो साहित्य अभी धनी विलासी मध्यवित्त श्रेणी से उतरकर अब निम्नमध्यवित्त श्रेणी में (*lower middle class*) उतरा है। प्रेमेन्द्र मित्र, बुद्धदेव वसु, अचिन्त्यकुमार सेन गुप्त ये तीन अति-आधुनिक साहित्य के त्रयी विशेषतः शहर की निम्नमध्यवित्त श्रेणी की ग्लानि, दुःख, गरीबों के ही चित्रकार हैं। हाँ, शैलजानन्द मुखोपाध्याय ने कोयले की खानों के कुलियों को लेकर कुछ अत्यन्त शक्तिशाली साहित्य की रचना की है, किन्तु बस। फिर भी ये अति-आधुनिक लेखक जब कुलियों को लेकर भी साहित्य रचना करते हैं तो उनको एक-एक व्यक्ति के रूप में देखते हैं, उनकी सामूहिक समस्याओं पर वे कम रोशनी डालते हैं। याद रहे कि बजाय दुर्गेशनन्दिनी के यदि हम कुंतीकुमारी को लेकर गल्प, कविता लिखें तो वह अनिवार्य रूप से जनता का साहित्य नहीं होगा, हम यदि प्रेमिका के द्वारा प्रेमी को बजाय चाकोलेट के बक्स या फौन्टेन पेन उपहार रूप में दिलवाने के यदि तेल की जलेबी या झब्बेदार नारा दिलवायें तो उससे साहित्य में एक नवीनता ज़रूर आ जाती है, इसका हम स्वागत करते हैं, किन्तु केवल इन्हीं बातों से यह साहित्य जनता का साहित्य पदवाच्य नहीं हो सकता। जनता का साहित्य वह है जो जनगण की आशा, आकांक्षा, भय, त्रास, हर्ष, आनन्द को रूप दे। दुःख की बात है कि अभी ऐसा साहित्य बँगला में भी कम है। इस बात के लिये दोष हमारे लेखकों का है, वे ऐसी श्रेणी से आते हैं कि वे इन बातों को समझ नहीं पाते, जनता की आत्मा तक उनकी पैठ नहीं है। रवीन्द्रनाथ ने 'चार अध्याय' नामक पुस्तक में राष्ट्रीय चेतना को

चोट पहुँचाकर अपने को पुलिसमैन की श्रेणी में ला दिया है यह एक नवीन समालोचक ने लिखा है, सच है ; किन्तु आज के अति-आधुनिक लेखक को भी उन्हें राष्ट्रीयता के मामले में चुप्पी के षड़यंत्र (*conspiracy of silence*) का दोषी बतलाया जा सकता है।

राष्ट्रीयता तथा श्रेणी-संघर्ष

बँगला के अति-आधुनिक साहित्य में प्रतिभा का अभाव नहीं है, किन्तु जनता के साहित्य की सृष्टि के लिये जिस साहस की ज़रूरत है वह शायद आज के लेखकों में प्रचुरता के साथ मौजूद नहीं है। इस साहस के अभाव का एक वाह्य कारण भी है, वह यह है कि सरकार के प्रहार से ये डरते हैं। मैं यह नहीं कहता कि आज का उपन्यास या कविता केवल राजनीति की बाँदी हो जाय, किन्तु यह ज़रूर है कि आज की जनता के सामूहिक जीवन में राजनीति को एक विशेष महत्त्व प्राप्त है। यह बात साहित्य में झलक जानी चाहिये। यदि ऐसा न हो सका तो कहना पड़ेगा कि साहित्य चाहे कितना भी समृद्ध हो वह वास्तविकता से परे एक कल्पना-विलास मात्र है। राष्ट्रीयता की तरह श्रेणी-संघर्ष भी एक वास्त-विकता है । मज़दूर-किसानवर्ग अपनी युग-युग की उदासीनता छोड़कर जिस तरह अपने शोषकों के विरुद्ध विद्रोह में उठ खड़े हो रहे हैं वह आज एक वास्तविकता है। नये युग के लेखक को इस संघर्ष को भी प्रतिबिम्बित करना पड़ेगा। राम, श्याम, यदु, मधु की प्रेमलीला से यह कहीं बढ़कर वास्तविकता है, बल्कि ठीक कहा जाय तो यह वास्तविकताओं में वास्तविकता है। एक वस्तुवादी लेखक भला इनसे मुँह कैसे मोड़ सकता है।

अति-आधुनिक साहित्य का क्षेत्र

हमने ऊपर जो कुछ कहा वह तो साधारण रूप से साहित्य के विषय में कहा, किन्तु हमारा सम्बन्ध विशेष रूप से कविता से है।

हम पहिले देखें कि यूरोप में आधुनिक साहित्य ने अपने सामने क्या काम रक्खे हैं, श्री अजितकुमार चक्रवर्ती ने इनको यों गिनाया है—

(१) सामाजिक न्याय—समाज के अन्तर्गत प्रच्छन्न या प्रकट अन्याय तथा कथित उचश्रेणी के सर्वेसर्वापन तथा उत्पीड़न के प्रति विद्रोह। विक्टर ह्यूगो ने अपने *Les miserables* नामक प्रसिद्ध उपन्यास में इस पर्याय का सूत्रपात किया है, टालस्टाय की कहानियों में भी इसको हम कहीं-कहीं प्रत्यक्ष करते हैं, किन्तु इबसेन के नाटकों में ही आकर हम इसको असली रूप में पाते हैं। उदाहरण स्वरूप *Pillars of Society* लिया जाय, इसमें कान्सल वर्निक अपने पापों का बोझ दूसरों पर कितनी ही चालाकी तथा फरेबों के द्वारा लादने की व्यर्थ चेष्टा करता रहा। आधुनिक समाज के स्तंभों की नींव इसी प्रकार दुर्बल है। वर्नार्डशा तथा गाल्सवर्दी इबसेनवादी हैं।

(२) समाजविज्ञान, जीवविज्ञान आदि के नये नये आविष्कार कला के वाहन बनाकर दिखलाये गये हैं। जैसे एक बात लीजिये *heredity* याने बंशानुक्रम, इसको अवलम्बनकर इबसेन का *Ghost*, हौप्टमैन का *Conflagration*, पिनेरो का *Profligate*, आस्कार वाइल्ड का *Lady Windermere's Fan* लिखा गया है।

(३) पाप का विश्लेपण—अस्वाभाविक (*abnormal*) अस्वस्थ (*pathological*) तथा अतिसामाजिक (*anti-social*) अपराधों का विश्लेषण। इस श्रेणी में *Emile Zola* आते हैं, इनसे भी बढ़कर है डास्टयएफस्कि का *Crime and Punishment* और *The Idiot* उपन्यास, स्ट्रीन्डबर्ग का *Father*, *Dance of Death*, हौप्टमैन का *Colleague Krampton*, *Reconciliation*, बर्नार्ड शा का *Mrs. Warren's profession* ब्रियो का *Damaged goods*, *maternity* आदि।

(४) श्रेणी-संघर्ष—गाल्सवर्दी, हौप्टमैन, बर्नार्ड शा आदि

में इसका प्रमाण मिलेगा। गाल्सवर्दी का *Strife* नाटक *Chairman John Anthony* और मज़दूरों के नेता *Roberts* का विरोध दिखलाया गया है। पूँजीपति एन्टनी समझता है पूँजीवाद की ही बदौलत समाज उन्नति कर रहा है, इसलिये मज़दूरों की माँग में उसे कुछ सत्य नहीं दिखाई पड़ता। हौप्टमैन का *Weavers* इसी श्रेणी का नाटक है। बर्नार्ड शा का *Widower's houses* इसी श्रेणी में आता है।

(५) परिवार तथा पारिवारिक सम्बन्धों का विश्लेषण। इस श्रेणी में इबसेन का *Little Eyolf*, स्ट्रीन्डबर्ग का *Father* तथा *The Connecting Link*, हौप्टमैन का *The Rats* आदि हैं।

(६) स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध का विचार। इसमें—

(क) मिथुन-प्रेरणा की लीला—इसमें स्ट्रीन्डबर्ग का *Countess Julie*, चेकौफ़ का *Uncle Vanya* बर्नार्ड शा का *Philanderes* आता है।

(ख) विवाह-सम्बन्धी समस्या—इसमें *Ibsen* की *Lady of the Sea*, *Doll's house*, टालस्टाय का *Krentzer Sonata*, गाल्सवर्दी का *The fugitive* शा की *Getting married* इत्यादि।

(ग) स्त्रियों की आर्थिक तथा सामाजिक स्वाधीनता का प्रश्न। उदाहरणत: इबसेन का *Doll's house* त्रिओ का *The Woman on her own* आदि हैं।

आधुनिक कविता का क्षेत्र

स्पष्ट है कि ऊपर साहित्य के जो क्षेत्र अजित बाबू ने गिनाये हैं वे मुख्यत: गद्य साहित्य के बारे में लागू हो सकते हैं, किन्तु इससे कविता के क्षेत्र का भी अनुमान किया जा सकता है। एक बात इस सम्बन्ध में याद रखने योग्य है कि आज की कविता कहाँ ख़तम होती है यह कहना मुश्किल है क्योंकि गद्य और पद्य का जो प्रभेद पहिले मान्य था वह अब विलीन-सा हो रहा है। आज की कविता

में अक्सर छन्द (याने जिसे किसी नियम में लाया जा सकता है) नहीं रहता, हिन्दी में लोगों ने इसको रबड़ छन्द कहा है। एक बात सिर्फ इसमें देखते हैं कि यह कुछ सीढ़ी को तरह लिखा जाता है। कोई-कोई नवीन कवि ऐसे पहुँचे हुए हैं कि उनका कोई मतलब समझ में नहीं आता, शायद लेखक स्वयं आकर समझावें तो समझ में आवे। हिन्दी के नामी कवियों में ऐसे हैं कि उनकी बहुत-सी कविताओं का कोई अर्थ नहीं होता, उनका अर्थ उन्हींको लेख लिखकर समझाना पड़ता है इसलिये बँगला में ऐसे कवि होंगे इसमें हिन्दीवालों को कोई ताज्जुब नहीं होगा। सौभाग्य से ऐसे कवि कम हैं। हमें यह समझ में आज तक नहीं आया कि ऐसी कवितायें जिनका मतलब सिवा कवि के कोई नहीं समझता छप कैसे जाती हैं, शायद सम्पादकगण इस कारण उसे छाप देते हैं कि वे पाठक के सामने कुछ नया पेश करना चाहते हैं।

आधुनिकतम कविता कोई वाद के विवाद में पड़ी नहीं रह सकती, समग्र जीवन ही उसका क्षेत्र है। अंग्रेजी में *Rupert Brooke* एक कवि हो गये हैं, उन्होंने युद्ध ही पर लिखा है। किप्लिङ्ग एक तरह से साम्राज्यवाद के कवि थे। इसी प्रकार मैं समझता हूँ जो भी लहर देश में उठे उसका एक-एक कवि होना चाहिये अवश्य ऐसे भी कवि होंगे जो इन सबका केन्द्रविन्दु है उसको लेकर कविता लिखेंगे।

हमने इस दौर में अब तक केवल एक निबन्ध के रूप में साधारण तौर पर इसलिये लिखा है कि अभी बँगला में अति-आधुनिक साहित्य का रूप स्पष्ट नहीं हुआ, शायद यह तब तक स्पष्ट न हो जब तक उसमें कोई रवीन्द्रनाथ या शरत्चन्द्र पैदा न हो। फिर भी एक बात इस साहित्य में सर्वत्र स्पष्ट है कि अब कवि तथा लेखक रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से मुक्त होना चाहते हैं। पाश्चात्य-साहित्य में इस समय रूसी-साहित्य का बँगला के लेखक बहुत अध्ययन करते हैं। इससे मालूम हो जाता है कि रवीन्द्र-प्रभावमुक्त

साहित्य का रुझान किस ओर है। अब हम अति-आधुनिक बँगला कविता का कुछ उदाहरण पाठक के सामने उपस्थित करेंगे।

मोहितलाल मजुमदार

मोहितलाल मजुमदार बँगला के अच्छे कवि तथा समालोचक हैं, उनको शायद हम इस दौर में स्थान न देकर इसके पहिले के दौर में ही पेश करते, क्योंकि रवीन्द्रनाथ से स्वतन्त्र होने की चेष्टा करने पर भी वे उसी के दायरे में रह गये हैं। उन्होंने एक कविता 'कालापहाड़' नाम से लिखी है, वह निःसन्देह एक अति-आधुनिक कविता है। इस कविता को यदि हम अंग्रेज़ी में अनुवाद करते तो इसका नाम *iconoclast* देते, पाठक को मालूम होगा कि कालापहाड़ एक प्रसिद्ध मूर्तिभंजक था। कवि ने कालापहाड़ को एक कट्टर नौमुस्लिम चित्रित न कर एक क्रान्तिकारी तथा कुसंस्कारों के विरुद्ध जेहाद करनेवाला करके चित्रित किया है। कालापहाड़ कवि के निकट वह शक्ति है जो किसी चीज़ के अन्दर से पैदा होकर उसकी भलाई के लिये उस पर चोट पर चोट करता है।

वंश जाहार वलि जोगाइलो यूपे, युगे-युगे, भयविभल-
जागियाछे तारि वीर सन्तान हुंकारे भरि जलस्थल

'जिसने पुश्त दर पुश्त युग-युग तक भयविह्वल होकर यूप में बकरा भेजा आज उसीकी वीर सन्तान जलस्थल को भर कर जगी है। उसके रास्ते में पहाड़ सिर झुकाकर सिजदा करता है, उसके कटाक्ष से सूर्य अस्त हो जाता है, उसके खड्ग में स्थिर विजली है, उसके आने से जो धूल उड़ती है वही मानों उसकी ध्वजा है और वह एक बादल की तरह है। लो वह आ रहा है, दुन्दुभि कड़कड़ गड़गड़-गड़गड़ बज रही है, क्या इतने दिनों बाद सुरासुरजयी वह युगावतार—कालापहाड़ उठा?"

पाषाण पुरीर खिल खुलि जाय, दूर हते सुनि हुहुकार

पूजावेदीमूले हेमतैजस झंकार करे आशंकार

"पाषाण-पुरी की सिटकनियाँ दूर से उसका हुंकार सुनकर खुल जाती हैं, पूजा की वेदी के सोने के बर्तनों से आशंका की झंकार निकलती है। विराट मन्दिर के जंगी कब्जे स्वयं निकलकर भाग जाते-से हैं, अँधेरे गह्वर में हाहाकार छा जाता है और मूर्ति के पत्थर आप से आप टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। पुजारी पंडे झंडे उतार-कर आँगन में पटकनी खाकर गिर पड़ते हैं। सुनो वह नगाड़ा बजाते हुए आ पहुँचा कालापहाड़।"

कविता दीर्घ है, किन्तु फिर भी हम कुछ और *stanzas* देंगे।

"अकाल उठे हुए बादल की तरह वह काल-सा कालापहाड़ आ रहा है, डंकिनियाँ झुंड का झुंड चल रही हैं, उसके गले में कंकालों का हार है। वह रक्त को शोषणकरनेवाली पाप की विभीषिका, प्राण को सिहरित करनेवाला मन्त्रगान, अन्धे की आरती तथा प्रदीप दान सब छुटाने आ रहा है। वह महाभयहारी, देवारि, मानव युगावतार है। वह शरीर का छाया-शृंखल मुक्त कर देगा तथा पत्थरों के बोझ को चूर्ण कर देगा।"

"करोड़ों आँखो से निकले हुए आँसुओं का झर्ना पत्थर के पैरों पर गिरा, पत्थर उससे घिस गया किन्तु अन्धे की आँख न खुली, जीव की चेतना का जड़ के ऊपर आरोप करते हुए कितनी ही चाँदनी रातें अँधेरी हो गईं, रक्त-लोलुप लोल रसनाओं पर अपने ही सरीखे अमृत का प्यासा समझकर बिता दिया। आज उसका अन्त हो गया, मोह का अवसान हो गया, वह देवताओं को दमन करनेवाला युगावतार आ रहा है। उसकी दुन्दुभि तथा नगाड़े बज रहे हैं। आ जो रहा है वह कालापहाड़।"

"अपने हाथों से दोनों पैरों में बेड़ी पहिनकर कमज़ोर जिसकी पूजा करते हैं, तथा हाथ जोड़कर दुआएँ माँगते हैं, आज उसकी अहो कैसी दुर्गति हो रही है। पिनाक कहाँ है, डमरू कहाँ है और

चक्र-सुदर्शन ही कहाँ है, आज मनुष्य से ही मन्दिरवासी अमरगण अभय माँग रहे हैं। लोकालय छोड़कर देवगण सात समुन्दर के पार भाग रहे हैं, जो भयंकर था आज उसकी भूल टूट चुकी। नगाड़े बज रहे हैं कड़कड़-कड़कड़ कालापहाड़ आ रहा है।"

"मठों को, मन्दिरों को तोड़ डालो, मूर्तियों को डुबा दो, वलि-उपचार तथा धूप, दीप, आरति को रसातल में जाने दो। न कोई ब्राह्मण है, न म्लेच्छ, न यवन, भगवान नहीं हैं, भक्त नहीं है। युग-युग में केवल मनुष्य है, मनुष्य को ऐसा सोचने के लिये गज भर की छाती मात्र चाहिये। लोकालय छोड़कर देवतागण सात समुन्दर पार भाग रहे हैं + + + + "

इसमें सन्देह नहीं कि यह कविता इस युग (*Zeit-geist*) की द्योतक एक सुन्दर कविता है। रवीन्द्रनाथ इस कविता को कभी नहीं लिख सकते थे।

वनफुल उर्फ बलाईचाँद मुखोपाध्याय

वनफुल एकमात्र आधुनिक बँगला लेखक तथा कवि हैं जो अपने उपनाम से ही परिचित हैं। ये औपन्यासिक, गल्प लेखक तथा नाटककार भी हैं। इनकी कविताओं का छन्द तथा भाषा सुन्दर होती है, मुख्यतः उन्होंने हास्यरस की कविता लिखी है। नीचे 'छात्री ओ छात्र' नामक एक कविता दी जाती है।

छात्री ओ छात्र
चिरकालइ हय तारा
निन्दार पात्र
पड़ाशोना व्यापारेते मन नाइ कारु बा
वेशविन्यासे केऊ चकचके चारु बा
आधुनिकमना केह सिनेमार भक्त

खद्दरधारी कारो मतामत शक्त
केऊ भारी भीतु-भीतु, केऊ भारी त्तात्र,
छात्री ओ छात्र

"छात्री और छात्र, हमेशा विचारे निन्दा के पात्र होते हैं। पढ़ने-लिखने में किसी का मन नहीं लगता, कोई बनठन कर बड़ी टीमटाम से रहते हैं, कोई नये फैशन के हैं तथा सिनेमा के भक्त हैं, कोई खद्दरधारी हैं, उनकी राय बड़ी कठिन है, कोई डरपोक हैं तो कोई त्तात्र हैं। छात्री और छात्र।"

इस कविता का जो कुछ कवित्व है वह छन्द में ही होने के कारण अनुवाद देना व्यर्थ है

सजनीकान्त दास

सजनीकान्त दास एक अति-आधुनिक कवि हैं, उन्होंने प्रेम के देवता को जैसे सम्बोधन किया उसमें कुछ पंक्तियां ऐसी हैं कि उन्हें पढ़कर रवीन्द्र-भक्त को शायद मिरगी आ जाय। हम केवल उन्हीं पंक्तियों को उनकी विचित्रता के लिये देते हैं।

मृत सागरेर चारि पाडे आज आमरा कोरेछि भीड़
भीड़ करियाछि गाढ़ तिमिरेर तीरे
कांदितेछि अनाहारे—
रुटी नई प्रभु, माछेर टुकरा नाई।
तुमि एसो-एसो, ए मृत सागर पाये हेंटे हओ पार,
भास्वर देहे दाँड़ाओ अन्धकारे!
क्षुधित जनेरे रुटी दाओ, जल दाओ,
प्रेम दाओ प्रभु, तोमार अमर प्रेम।
धन्य कोरेछो मानुषे एकदा मानुषेर रूप धरि

से मानव मरियाछे
तोमार परशे मृतेरा लोभुक प्राण

"मरे हुओं के सागर की चारों दिशाओं में आज हम जमा हैं, हमने गाढ़ अन्धकार के तीर में भीड़ की है, हम अनाहार से रो रहे हैं। हे प्रभु रोटी नहीं है, मछली का टुकरा नहीं है। तुम आओ, आओ, इस मृत के सागर में पैदल चलकर पार होकर आओ। अँधेरे में भास्वर देह से खड़े हो जाओ। भूखों को रोटी दो पानी दो, प्रभु प्रेम दो, अपना अमर प्रेम। एक ज़माने में तुमने मनुष्य का रूप धरकर मनुष्य को धन्य किया था। वे मानव जिनमें तुम पैदा हुए थे मर गये हैं, तुम्हारे स्पर्श से मरे हुओं को जीवन मिले।"

इस कविता का भाव तथा भाषा सब रवीन्द्र-सत्येन्द्र से पृथक है। स्वप्नलोक की अस्पष्टता इसमें नहीं है, इसमें है तेजस्वी परुष वास्तविकता। ज़रा कवि के साहस को देखिये, वे प्रेम के देवता से पुष्पक विमान या गरुड़ पर न आने को कहकर पैदल आने को कहते हैं। फिर उनसे शिकायत यह नहीं करते कि आजकल की कालेज-किशोरियाँ प्रेम नहीं चाहतीं मोटर चाहतीं हैं, बल्कि कहते हैं रोटी नहीं है, मछली का टुकरा नहीं है। फिर उनसे प्रेम नहीं माँगते बल्कि माँगते हैं रोटी, पानी, फिर सबसे पीछे प्रेम मांगते हैं। *Man does not live by bread alone* की कैसी नई व्याख्या है।

कहा जा सकता है कि यह कोई कविता नहीं है। विचार्य है। मैंने पहिले ही कहा एक नई धारा या *spirit* पैदा हो चुकी है, किन्तु जब तक कोई महान प्रतिभा पैदा नहीं होती जो अपनी आत्मा के अन्दर इस नई धारा को परिपाककर उसको एक कलामय रूप देने में समर्थ हो तबतक यही सन्देह होता रहेगा। फिर रवीन्द्रनाथ को भी तो पूर्ण तरीके से समझने में समय लगा था।

रवीन्द्रनाथ मैत्र

श्री रवीन्द्रनाथ मैत्र कुछ बड़ी मार्मिक कहानियों के लेखक के

रूप में प्रसिद्ध थे, किन्तु उनकी कविताओं की रचना में भी हम एक आधुनिक की आत्मा को स्पंदित होते हुए पाते हैं। वे बड़े ज़ोरों से लिखते हैं।

धरणीर बुके
धूलाय लभेछि जन्म, देवत्वेर नाहि अहमिका
सब अङ्गे माखि धूलि, आँकि भाले पंक जयटीर।
पथ बाहि चलि गर्व-सुखे
स्वर्गपाने तुलि अश्रुसिक्त समुज्वल मुखे।

'धरणी की छाती पर धूल में हमारा जन्म हुआ है, देवत्व की अहमिका मुझमें नहीं है। सब अङ्गों में धूल लिपटा लेते हैं, ललाट पर कीचड़ की जयटीका लगाते हैं। हम गर्व में तथा सुख में रास्ते में चलते हैं, स्वर्ग की ओर हमारा सिर उठा रहता है और मुख अश्रुसिक्त समुज्वल होता है।'

दंभभरे खरदृष्टि हाने
जाहारा दाँड़ाये दूरे नाहि चाहि ताहादेर पाने
दाँड़ाये माटिर परे स्वरगेर करे अभिनय
तारा—मोर नय, केह नय।

'जो लोग दूर से खड़े-खड़े घूरते हैं हम उनकी ओर नहीं देखते। जो लोग दूर खड़े हैं हम उनकी ओर नहीं देखते, जो मिट्टी पर खड़े रहकर स्वर्ग का अभिनय करते हैं वे हमारे नहीं है, नहीं वे कोई नहीं होते।'

कवि वेदना से ही अपनी अनुप्रेरणा लेते हैं, वे कहते हैं।

धरणीर जन्मतिथि हते
मानुष भासिया चले दुःखज्वाला वेदनार स्रोते

शंका ओ संशय द्विधा लज्जा भय संघाते फेनिल

\+ + + +

जतो वेदनार हाहा डुबे जाय केह नाही सोने
आमि कान पाति
सुर खुँजि तारि माझे, ताइ दिये गान मोर गाँथि

'धरणी की जन्मतिथि से ही मनुष्य दुःख-ज्वाला की वेदना के स्रोत में बह चलता है, वह स्रोत भी कैसा है कि शंका, संशय, द्विधा, लज्जा तथा भय के संघात से फेनिल। वेदनाओं के जितने हाहाकार डूब जाते हैं, कोई उन्हें नहीं सुनता, मैं कान डालकर उन्हें सुनता हूँ, उसमें सुर खोजता हूँ तथा उसीसे अपना गान पिरोता हूँ।'

कवि मनुष्य को रक्त, मांस, अस्थि तथा भ्रान्ति से बना पाते हैं। थोड़ा-बहुत इस जीवन में सुख शायद होता, किन्तु उसके बीच में जाकर मृत्यु को बैठा दिया गया है। मरीचिका के लिये दौड़ जारी है, कवि भी दौड़नेवालों के हाथ में हाथ डालकर दौड़ रहे हैं। कवि ने कभी कोई गान नहीं सुना, आनन्द कहाँ है उसका सन्धान नहीं पाया है, देवतागण लाखों पहरेदारों के बीच में लोहे की दीवारों से घिरे रहकर भँवरहीन मन्दाकिनी के किनारे चिरश्याम पारिजात के नीचे बैठकर आनन्द-अमृत का जो दौर चलाते हैं कवि उसके स्वाद से परिचित नहीं। युग के बाद युग आता है, किन्तु कवि वही एक भाषा तथा अपूर्ण अतृप्त साध पेश करते हैं। चारों दिशायें प्रवंचित पिपासा के हाहाकार से भर उठती हैं। कम्पमान करों से प्याला गिर पड़ता है, इस पर कवि आर्तनाद करते हैं, पानी समझकर मुट्ठियों से पागल बालू खोदते हैं। उसीके ताल पर छन्द कवि बनाते हैं, उसीसे गान बनाते हैं।

निःसंदेह यह एक नया जगत है।

रवीन्द्रनाथ मैत्र से बँगला साहित्य को बड़ी आशायें थीं, किन्तु ३६ साल की उम्र में ही उनकी मृत्यु हो गई। ऊपर की कविता केवल एक उच्छ्‌वास भर न थी, उन्होंने बराबर अपने जीवन में उन्हीं की सेवा की जिनको कोई टका सेर नहीं पूछता और उन्हींके विषय में लिखा। जिन पिछड़े हुए पतितों की अवरुद्ध वेदना भीतर-भीतर दम घुटकर रह जाती थी, उनकी इस वेदना को भाषा देकर सुलगा देना उनकी लेखनी की विशेषता है।

प्रेमेन्द्र मित्र

प्रेमेन्द्र मित्र बँगला के बहुत बड़े प्रतिभाशाली कवि तथा औपन्यासिक हैं, उनके सम्बन्ध में एक ज्ञातव्य बात यह है कि काशी में उनका जन्म (१६०४) हुआ। उन्होंने स्वयं ही कहा है।

आमि कवि जतो कामारेर आर काँसारिर आर छुतोरेर
मुटे मजुरेर
—आमि कवि जतो इतरेर

"मैं लोहारों का, ठठेरों का, बढ़ैइयों का, कुली तथा मज़दूरों का कवि हूँ, मै सब इतरों का कवि हूँ।"

बुद्धदेव वसु ने प्रेमेन्द्र के सम्बन्ध में जो लिखा है वह अनुधावन के योग्य है। वे लिखते है "प्रेमेन्द्र कविता उनकी स्वकीयता के द्वारा उज्ज्वल है। उनकी कविता दुनिया की छोटी से छोटी चीज़ से लेकर मनुष्य के भाग्यविधाता के चरणप्रान्त तक विस्तृत है, पुराना अखबार, भाड़े के मकान से लेकर सीमाहीन आकाश में घूमते हुए ग्रह-उपग्रहों तक उनकी गतिविधि है। उनकी रचना-रीति ओजःशीला है, भाव-प्रगाढ़ता के गतिवेग से वह स्वयं ही तीक्ष्ण हो जाती है। मनुष्य की व्यर्थता, हीनता तथा दुर्बलता के सम्बन्ध में गहरी चेतना ही उनके काव्य का मूल-सूत्र है। मनुष्य के घर मे उनका देवता जन्म लेता है, किन्तु घटनाओं के संघात से ज्ञात होता है कि देतवा कहीं नहीं हैं।

आज

विकृत क्षुधार फाँदे बन्दी मोर भगवान काँदे

'आज विकृत भूख के जाल में क़ैदी होकर मेरा भगवान् रोता है।'

आधुनिक गणतान्त्रिक भाव उनकी कविता में स्पष्ट है। उनकी एक प्रसिद्ध कविता 'महासागरेर नामहीन कूले' उद्धृत की जाती है—

महासागरेर नामहीन कूल
हतभागादेर बन्दरटीते भाई,
जगतेर जतो भाङा जाहाजेर भीड़।
माल बये-बये घाल होलो जारा
आर जाहादेर मास्तुल चौचिर
आर जाहादेर पाल पुड़े गेलो
बुकेर आगुने भाई
सब जाहाजेर सेई आश्रय-नीड़

'महासागर के नामहीन किनारे में अभागों के बन्दर में दुनिया के जितने भी टूटे जहाज़ों की भीड़ है। जो जहाज़ माल ढोते-ढोते घायल हो गये, जिनकी मस्तूलों के धुर्रे उड़ गये, जिनके पाल सीने की आग से जल गये उन सब जहाज़ों का यह आश्रय-नीड़ है।'

'बड़े-बड़े अथाह कालेपानियों को मथ कर, नमकीन पानी में डूबते या नहाते, डूबे पहाड़ों के धक्कों को निगले हुए तथा आँधी से झकझोरे हुए जितने लबेजान जहाज़ बर्खास्त हो चुके हैं तथा जिनके अंजरपंजर ढीले हो चुके है उन सब बेकार बेमसरफ़ जहाज़ों की भीड़ इन अभागों के बन्दर में है।'

'भाई दुनिया में बड़ी कड़ी चौकीदारी है यहाँ सौदागर भी बड़ा हुशियार है, जिसके पतवार अब पानी में कुछ कर नहीं पाते उन्हें

चुपचाप हट जाना पड़ता है। जिसके कमर का ज़ोर घट गया, जिसकी लकड़ी में घुन लग गया, जिसका कलेजा फट गया या जन्म भर के लिये जो ज़ख़्मी हो गया, सौदागर की जेटियों में या बहियों में ढूँढ़कर जिन्हें कहीं नहीं मिलेगा, उन जहाज़ों को महासागर के इस नामहीन किनारे पर अभागों के बन्दर में कोई भी पा सकता है। यहाँ उन्हीं सब टूटे जहाज़ों की भीड़ है।'

'जिनकी रीढ़ टेढ़ी हो गई और रस्से टूट गये, कब्जे और कल बिगड़ गये, जिनका सब ठाठ जाता रहा, झंडा नीचा हो गया, जोड़ खुल गया, छेद के मारे जिनमें अब तैरते रहने की सामर्थ्य नहीं रही उन सब आभागे असमर्थों तथा निर्वासितों की यहां भीड़ है।

सावित्रीप्रसन्न चट्टोपाध्याय

सावित्रीप्रसन्न चट्टोपाध्याय एक ऐसे कवि हैं जो दो युगों की गोधूलि में रहते हैं, कभी उनका क़दम इस युग में रहता है तो कभी उस युग में। 'आजो जारा मरे नाई' कविता में वे मृत्यु पर एक अजीबोग़रीब दृष्टि डालते हैं। वे मृत्यु को अनिवार्य पाते हैं, हर घड़ी वह जैसे मनुष्य का ख़ून पीने के लिये उद्यत है। ऐसी परिस्थिति में जो लोग जीते हैं कवि उनके ललाट पर अमृत की जयटीका देते हैं। यही तो पुरुषार्थ है—

आजो जारा मरे नाई, प्रज्वलित मृत्युयज्ञशाले
समिध संग्रहे व्यस्त, झञ्झाक्षुब्ध दिक्चक्रवाले
उत्कर्ण होइया आछे प्रत्यासन्न आह्वानेर लागि,
दुर्विषह दिवसेर ग्लानि ढाके अन्ध निशा जागि
विस्फारित नेत्रपाते तारा देखे नव सूर्योदय
तादेरि निर्भीक कंठे विश्व प्राण लभिबे अभय।

आजो जारा मरे नाइ मरिबार सहस्र कारणे,
खुँजिया पेयेछे वाणी धिकृत एक जीवन-धारणे
अकरुण वंचनाय अवहेलि गनिछे प्रहर
सहस्र लाञ्छना माझे तुलितेछे हासिर लहर,
मरिया न मरे तारा, अनिवार्य मृत्यु पथगामी
रुधिराक्त चक्रनेमि तादेरि इङ्गते जावे थामि'
आजो जारा मरे नाई, मरिबे ना तारा कोने काले
अमृतेर जयटीका चिरांकित ताहादेरि भाले

"आज भी जो लोग नहीं मरे हैं, प्रज्वलित मृत्युयज्ञशाला में समिधि संग्रह करने में व्यस्त हैं, आँधियों से क्षुब्ध क्षितिज में आनेवाली पुकार के लिये उत्कर्ण हैं। वे असह्य दिन की ग्लानि अँधेरी रात जाग कर ढकते हैं। फिर भी आँखों को विस्फारितकर वे नया सूर्योदय देखते हैं, उन्ही के निर्भीक कंठ से विश्व को अभय प्राप्त होता है।"

"मरने के सहस्र कारण से भी आज जो नहीं मरे, इस धिकृत जीवन को धारण करने के लिये उन्होंने वाणी खोज पाई है। जब अकरुण वंचनायें आती हैं तो वे धैर्य धारणकर पहर गिनते हैं, सहस्र लाञ्छना में वे हँसी की लहर पैदा कर देते हैं, वे मर-कर भी नहीं मरते, उनके इशारे से मृत्युपथगामी रुधिराक्त चक्र-नेमि ठहर जायगा। जो आज भी नहीं मरे वे कभी भी नहीं मरेंगे, अमृत की जयटीका हमेशा उनके ललाट पर अंकित है।"

इसका सारांश यह है कि आधुनिक मृत्यु की वास्तविकता को समझता है, फिर भी वह आशावादी है।'

अचिंत्यकुमार सेनगुप्त

अचिन्त्यकुमार बँगला के बहुत शक्तिशाली लेखकों में हैं। वे

बंगाल सरकार के न्याय विभाग में नौकर हैं, फिर भी वे साहसी लेखकों में समझे जाते हैं। इनकी शैली तेजस्वी तथा व्यक्तित्व-व्यंजक है, दृढ़ता की द्योतक तथा अनायास है। उपमा, व्यंजना तथा वर्णन में वे सम्पूर्ण स्वतंत्र हैं। ये कवि के अतिरिक्त औपन्यासिक तथा गल्पलेखक हैं। प्रकृति और मानव दोनों से उनका सम्बन्ध है, उनकी कविता में 'प्रकृति प्रकृति के लिये इस प्रकार की प्रकृति पूजा नहीं है बल्कि मानव और प्रकृति को एक ही चीज़ का दो पहेलू करके दिखालया गया है। प्रकृति उनके निकट अर्थमयी इस कारण है कि मानप हैं। वे कहते हैं—

आमार परान मुखर कोरेछे सिन्धुर कलरोले
प्रभंजनेर प्रति पदपाते आमार परान दोले
आमार पराने भाई
कोटी मानवेर अश्रुजलेर जोयार शुनिते पाई
सूर्येर बुके की भूख जागिछे आमार परान जाने
कीटेर पाखार अस्फूटतम वेदना आमारे हाने
आमार पराने भरा
ए पथचारिणी वसुन्धरार अकारण घुरे मरा

इत्यादि

'मेरी आत्मा समुद्र के कलकलनाद से मुखर है, वायु के प्रति पदक्षेप से मेरा हृदय आंदोलित होता है। अपनी आत्मा में करोड़ों मनुष्यों के अश्रु की बाढ़ सुन पाता हूँ। सूर्य के हृदय में कौन-सी भूख है मेरी आत्मा जानती है, एक कोड़े के डैने की अस्फुटतम वेदना मुझे दुखी करती है। मेरी आत्मा में पथचारिणी वसुन्धरा का अकारण घूमना भरा है। वनानी की वीणा में मेरा व्याकुल प्राण शब्द कर उठता है। घास की सभा में मेरा प्राण हरा हो जाता है,

मेरे प्राण में प्रत्येक पुष्प का रंगविरंगा जादू सिहर उठता है, मेरे ही प्राण को निचोड़-निचोड़कर आकाश नील हो गया है। कहीं पर कुछ खाली नहीं रहा, मेरे प्राणों में विश्ववेदना का छत्ता जमा है। दीर्घश्वास की दरिया उसमें आन्दोलित हो रही है; मरुभूमि की शून्यता अन्धकार की कातर व्याकुलता, गिरी हुई कली की व्यथा वहाँ है। मेरे प्राणों में युगान्तार की मृत्यु की निशा मूर्छित है।'

सच बात कही जाय तो इस कविता में कुछ ऐसी बातें हैं जो रवीन्द्रनाथ का स्मरण दिलाती हैं।

अन्नदाशंकर राय

अन्नदाशंकर राय का जन्म उड़िष्या के ढेङ्कानल राज्य में हुआ, विलायत में आई० सी० एस० पढ़ते समय इन्होंने पहली पुस्तक लिखी। भाषा इनकी विशेष रूप से सुन्दर है, मालूम होता है जैसे एक-एक शब्द के पीछे साधना है। साहित्य में ये देवत्व का नहीं मनुष्यत्व का नारा बुलन्द करते आये। कवि से ये बड़े गल्पकार तथा औपन्यासिक हैं। इनका एक उपन्यास 'सत्यासत्य' अढ़ाई हज़ार पृष्ठों में समाप्त हुआ है। एक कविता में वे कवि को अपनी तस्वीरों की झोली प्रकृति से भर लेने के निमित्त पुकारते हैं—

ओरे कवि तोर छविर पसरा
भरिया लइवि आय
उत्सबमयी साजियाछे धरा
वसन्त नाटिकाय
आज पेये जावि जाहा चाय मन
एतो मिठा लगा भानुर किरण
पाखिदेर सने वने समीरण
एतो शीष दिये जाय

'अरे कवि आकर अपनी तस्वीरों की झोली भर लो, वसन्त नाटिका में पृथिवी उत्सवमयी हो रही है। आज जो चाहोगे सो ही मिलेगा, सूर्य की किरणें इतनी मीठी लगती हैं। वन में चिड़ियों के साथ पवन सीटी देता जा रहा है++++। कहीं पर एक भी बादल नहीं, सब बादलों ने छुट्टी ले रक्खी है, नावों का इधर से उधर जाना बन्द है इसलिये समुद्र स्थिर है। हमारे इस हरे द्वीप के किनारे पर उसीका पानी आकर छलकता हुआ लगता है, हमारे पैरों में उसीका मुट्ठियों फेना लगता है। पेड़ों के पीले चेहरे पर तामे के रंग का सुनहलापन दौड़ गया है, विदेशी नामवाली पक्षियों ने उसको चूमने के लिये उसको घेर लिया है' इत्यादि

प्रकृति में मनुष्य के हृदयावेगों के आरोप का जो वर्णन है जिसे अंग्रेजी में *pathetic fallacy* कहते हैं हमेशा से कवियों की एक विशेषता रही है। हम चाहें तो इसे प्रकृति में प्राणप्रतिष्ठा कह सकते हैं। नये कवि इसमें अपने पहिलेवालों से पीछे नहीं हैं, किन्तु साथ ही वे इस पृथिवी को उसकी मिट्टी तक को बहुत प्यार करते हैं। अन्नदाशंकर इसी कविता में कहते हैं—

ए जे आमादेर सेई आदरिणी
सूर्यवदना सोनार मेदिनी एर
प्रति तिल चिनि चिनि चिनि
प्रतिटी अङ्गमय।

'यह तो हमारी वही प्यारी सूर्यमुखी सोने की पृथिवी है इसके तिल-तिल तथा अंग-अंग को जानता हूँ।'

अजितकुमार दत्त

अजितकुमार दत्त ने प्रेम पर जो सनेट लिखे है वे सुन्दर हैं। सनेट लिखनेके लियेजो शब्दों की मितव्ययिता तथा सारगर्भता चाहिये वह अजितकुमार दत्त में है, किन्तु फिर भी उनका विषय एक ही

होने के कारण वे कोई बड़े कवि न हो सकेंगे। प्रेम पर लिखी हुई उनकी कवितायें आधुनिक हैं इसमें सन्देह नहीं। एक सनेट में आधुनिक की नित्तता के साथ शुरू करते हैं —

नाहि जानि तथागत बुद्धेर बचन सत्य किना—
पुनराय जन्मलाभ आछे किना अदृष्टे आमार ;
चार्वाकेर तिक्त बाणी, 'भस्मीभूत ए देहेर आर
पुनरागमन नाइ', सत्य किना से-कथा जानि ना

'मालूम नहीं तथागत बुद्ध का बचन सत्य है कि नहीं, मालूम नहीं फिर से जन्म पाना मेरे अदृष्ट में है कि नहीं, यह भी नहीं मालूम कि चार्वाक की कड़वी बात 'भस्मीभूत इस देह का पुनरागमन कहाँ' सच है कि नहीं। यदि यह जीवन अर्थ, यश या मान के बिना भी कट जाय तो मैं इनके लिये फिर जन्म लेना नहीं चाहता। मैं नये वस्त्र की तरह देह लेकर मोक्ष की आकांक्षाकर पृथिवी में नहीं आना चाहता।'

'मैं इस जीवन में केवल तुम्हारा सुन्दर प्यार चाहता हूँ, मैं तुम्हारा समुद्र की तरह स्नेह चाहता हूँ। मैं कविता में उन्हीं बातों का संग्रह करना चाहता हूँ जिसको किसो ने कभी नहीं कहा, दूसरे भला तुम्हारी बातें किस प्रकार जानेंगे ? इस जीवन में तो तुम हो, तुम रहो, उसके बाद जब मैं मर जाऊँगा तो तुम्हारा प्रेम मेरी कविता में अमर होकर रहेगा।'

कवि को मौलिक रूप से हम रवीन्द्रयुग के कवियों से पृथक कर नहीं सकते, अवश्य उनकी शैली मौलिक रूप से भिन्न है। दर्शन (*philosophy*) रवीन्द्रयुग से विभिन्न इस शैली के क्रान्तिकारित्व के कारण हम अजित बाबू को अति आधुनिक समझने के लिये बाध्य हैं। कवि का विषय अत्यन्त व्यक्तिगत प्रेम है, यह वही विषय है जिसे विद्यापति, चंडीदास, जयदेव ने अप-

नाया था, किन्तु *approach* में नूतनत्व है ।

बुद्धदेव बोस

श्री बुद्धदेव बोस शायद इस समय के बँगला लेखकों में सबसे अधिक शक्तिशाली हैं; गल्प, उपन्यास, कविता, नाटक, समालोचना सभी क्षेत्र में उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनका एक उपन्यास 'एरा आर ओरा' अश्लीलता के जुर्म में जब्त हो चुका है। इस समय ये 'कविता' नामक कविता-विषय पत्रिका के सम्पादक भी हैं। इनकी रचना में इनकी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय पग-पग पर मिलेगा। यह आश्चर्य की बात है कि बुद्धदेव की पुस्तकों का अभी हिन्दी में अनुवाद नहीं हुआ। बुद्धदेव की 'शापभ्रष्ट' कविता बहुत लम्बी है नहीं तो हम उसे यहाँ पर देते, हम 'आर किछु नाहि साध' नामक उनकी कविता देते हैं, यह एक तरह से कवि की आत्मकहानी है।

आर किछु नाहि साध। जानि, मोर तरे नहे जयमाल्य
यशेर मुकुट
विश्वेर कविरा जतो ज्वलिछे नक्षत्र हये रजनीर
श्यामल-अंचले

'मेरी और कुछ साध नहीं है। जानता हूँ मेरे लिये न तो जयमाला है न यश का मुकुट है। विश्व के कवि नक्षत्र होकर रजनी के श्यामल अंचल में विराजमान हैं वहाँ भी मेरा स्थान नहीं है। नील आकाश के नीचे मेरी स्तुति का गान नहीं मुखरित होगा +++नर-चित्त के भक्तितीर्थ में मेरा नित्य स्वर्ग नहीं है, मृत्यु का कड़वा कालकूट मेरा चरम भाग्य है। मैं जानता हूँ इक्कीसवीं सदी की कोई सप्तदशी मेरी कविता को चाँदनी स्नात जँगले के नीचे नहीं पढ़ेगी।'

'फिर भी जो आज संगीत की लहर हृदय के हिम-सरोवर में

जग रही है वह केवल तुम्हारे लिये है। तुमको जो मैंने सब अंगों में, मर्म में, मन में, प्राण में पाया था, तुमको विरह के स्पन्दमान अन्धकार में तथा मिलन वासर में पाया था यही बात मैं आकाश, धरणी, घास को तथा समुद्र के कान में कहना चाहता हूँ। इस परिपूर्णता का बोझा अकेले-अकेले मुझसे ढोया नहीं जाता इसलिये हज़ारों में अपने को लाखों गाने में बाँटता फिरता हूँ।'

पाठक इस बात को देखेंगे कि यह कविता अजितकुमार दत्त की कविता से विभिन्न नहीं है। मैंने इस अध्याय के प्रारंभ में कहा है कि कई कारणों से अति-आधुनिक भारतीय साहित्य ने अपनी आत्मा को पूर्ण रूप से खोज नहीं पाया है। मार्क्स ने यह जो कहा था कि हमारा काम इस जगत की केवल व्याख्या करना नहीं है, बल्कि उसको बदलना है इस बात को हमारे यहाँ के लेखकों ने अभी नहीं समझा है। हमारा साहित्य इसलिये वास्तविकता के पास आने पर भी वास्तविक नहीं हो पा रहा है। बुद्धदेव बोस में लेखन-शक्ति है, सूक्ष्मदृष्टि है, भाषा का ऐश्वर्य है, फिर भी वेष्क तरह से *ideal world* याने ख्याली दुनिया में रह-से जाते हैं। हमारे ये कवि तथा लेखक उसी श्रेणी से हैं जिससे बँगला के रवीन्द्र-युग के कवि हैं, देश में चलनेवाले भयंकर उथल-पुथल को अक्सर ये समझते नहीं, कभी तो उससे बेख़बर रहते हैं यहाँ तक कि उसकी हँसी उड़ाते भी देखे गये हैं। यह बात एक तरफ़ रही और दूसरी तरफ़ शोलोकोव को देखिये कि डान नदी के स्टेप (*steppes*) में जो सामूहिक खेती में व्यवहारिक रूप से भाग लेनेवालों में हैं और "टूटी मिट्टी" नामक रूसी उपन्यास के लेखक भी वही हैं। इसको बहुत से लोग वर्त्तमान रूस का सर्वोत्तम उपन्यास समझते हैं।

बुद्धदेव में इसी समझ या प्रेरणा का अभाव होने के कारण वे गुमराह होकर अश्लीलता की ओर गये। सौभाग्य से बुद्धदेव उधर से लौटे हैं, किन्तु अब भी वे राह खोज रहे हैं। बुद्धदेव

की 'ब्याङ' (मेढक) नामक एक ताज़ी कविता पाठक के सामने अनुवाद में पेश की जाती है।

"वर्षा में ही मेढक की पाँचों ऊँगली घी में है। पानी बरसना बन्द हुआ ही है, आकाश तो चुप है, किन्तु मेढकों का एकसाथ लगाया हुआ नारा सुनाई पड़ रहा है। उन्मुक्त कंठ का ऊँचा सुर आदिम उल्लास में बज रहा है, आज तो विच्छेद का ही, न भूख का ही, न मृत्यु का भय है। घने बादल घास हो गये, स्वच्छ पानी मैदानों में जमा है, उद्धत आनन्द गान से उत्सव का दोपहर कटता है। स्पर्शमय वर्षा आई, नया कीचड़ कितना चिकना है। मेढक मानो स्फीतकंठ वीतस्कंध संगीत का शरीरधारी सप्तम है, अहा यह मेघ की हलदी-हरी कान्ति कैसी चिकनी है। मेढक की दृष्टि काँच की तरह स्वच्छ ऊपर की ओर लगी है, अहा जैसे ध्यान-मग्न ऋषि की तरह ईश्वर को खोज रहा है। पानी बरसना बन्द हो चुका, दिन खतम हो रहा है, स्तंभित आकाश में गंभीर वन्दना-गान बज रहा है। ऊँची आवाज़ धीमी हो रही है, दिन की अब आखिरी साँसें चल रही हैं। अन्धकार शतच्छिद्र एकच्छन्दा तन्द्रा को बुला रहा है। आधी रात में किवाड़े बन्दकर हम आराम से बिस्तरे पर लेटे हैं, स्तब्ध पृथिवी में केवल एकाकी उत्साही अक्लान्त एक ही सुर सुनाई पड़ रहा है, निगूढ़ मन्त्र का जैसे आखिरी श्लोक हो, मेढक का उच्चारित क्रोक, क्रोक, क्रोक।"

मेढक के विषय में इतनी बड़ी कविता और उसे ईश्वरभक्त ऋषि बतलाना यह एक आधुनिक कवि का ही काम है।

हुमायुन कबीर

हुमायुन कबीर को बंगाल के बाहर लोग मुसलमानों के एक राष्ट्रीयतावादी नेता के रूप में जानते हैं, कोई नहीं जानता कि बँगला के एक बड़े कवि हैं। उन्होंने अपनी कुछ कविताओं का अंग्रेज़ी में अनुवाद कर विलायत में छपाया है, अच्छी-अच्छी

पत्रिकाओं ने उनकी प्रतिभा का अभिनन्दन किया है। प्रकृति को वह सुन्दर देखते हैं, किन्तु जब प्रकृति और मनुष्य के स्वार्थ में संघर्ष होता है तो यह मनुष्यों का कवि प्रकृति को आड़े हाथ लेने में नहीं चूकते। बंगाल में गंगा की दो शाखा हो गई है एक भागीरथी, दूसरी पद्मा। पद्मा इस बात के लिये मशहूर है कि अक्सर अपना पथ बदलती है, और जो भी गाँव वगैरह उसके रास्ते में आगये उनकी खैरियत नहीं। इस प्रकार पद्मा प्रकृतिका एक अद्भुत रूप है कवि ने कई कवितायें इसी पर लिखी हैं। मालूम होता है कवि को यह विषय उसी तरह प्यारा है जैसे दर्द वाला दाँत जीभ को, इधर-उधर गई और उस दाँत के पास पहुँच गई। हम इस कविता के कुछ उद्धरण ही दे सकते हैं—

बहुदिन परे आजि रोगजीर्ण आँखि दुटि मेलि
हेरिलाम तोरे।
श्रावणेर घनघटा एइ पुंज मेघेर आड़ाले
अपूर्व योगिनीवेशे मुक्तकेशे आसिया दाँड़ाले
नयनेर आगे मोर। लुब्ध क्षुब्ध उर्मिराशि ठेलि
चलेछे बहिया क्षुधु—आविल सलिलराशि तव
नेचे ओठे मरणेर तांडव नर्तने नव-नव—
चिरमुक्ता—धरा दिबिनाको कोनो डोरे?
शैशव-जीवन हते तोरे आमि देखितेछि नदी
पाइनाको शेष।

'बहुत दिनों बाद रोग-जीर्ण आँखों को खोलकर मैंने आज तुझे देखा। श्रावण की घनघटा इस मेघपुंज की आड़ में तू एक अपूर्व योगिनी के वेश में बाल खुली हुई हालत में मेरे सामने खड़ी हो गई। क्षुब्ध, रुद्ध लहरों को ढकेलती हुई तू बह चलती

है। तेरा आविल जल मरण के नये-नये तांडव नर्तन में नाच-नाच उठता है। हे चिरमुक्ता, तू किसी भी डोरी से पकड़ाई नहीं देगी। मैं बचपन से तुझे हे नदी देख रहा हूँ फिर भी तेरा अन्त नहीं पाता।'

'कभी तो शरत के प्रातःकाल में तू पूर्णवारि, शान्त और अचंचल है, कलकल-कलकल तेरा पानी चलता जाता है, कभी वैशाख की सन्ध्या में यदि बादल आगये तो प्रलय–नर्तनछन्द से तुम्हारा प्राण नाच उठता है, तब तुम्हारे सलिल से ध्वंसलीला का गीत निकलता है, उस तुम्हारे नयनों में करुणा का लेश नहीं है।'

'वालरवि की किरणों में हे नदी मैंने तुम्हारी फिर दूसरी ही हँसी देखी है, पूर्णिमा के प्लावन में तुम्हारे किनारे पर काशतृण फूले हैं, अधीर पवन में मादक पुष्पों की गंध तैरती रहती है। तुम्हारी मुग्ध जलराशि फिर भी दौड़ती है। हृदय में धनधान्य लेकर तथा आँचल को वनपुष्पों से सजाकर सुहाग-लज्जा से एक किनारे से दूसरे किनारे तक मृदुवाणीपूर्ण होकर दौड़ती हुई जाती हो जैसे किसी को प्यार करती हुई दूर जा रही हो। + + + आज फिर मैंने तुम्हारा यह क्या नया रूप देखा, भैरविनि की तरह बनी हुई हो, आकाश में मेघों की घटा है। + + + + अकस्मात् तेरा स्रोत सूर्य की किरणों से छुरीकी तरह चमक उठता है, यह मानो तेरे हिंस्र दन्त तथा होठों पर कुटिल हँसी है, तेरे निठुर नयनों में हत्या की साध बाघ की हत्या करने की इच्छा की तरह इस शान्त स्मित आलोक में स्पष्ट हो जाती है। तू प्रवल है, दुर्वार है, अत्याचारी है, श्यामशोभावाले देश को तोड़फोड़कर पृथिवी में अपना झक्की पथ बनाती रहती है। तू किसी की नहीं सुनती, फिर भी नर क्या करे रोता है किन्तु एक दूसरे को सीने से लगाकर जीता है। बाहर विशाल विश्व अपने कठोर जाल को बिछाता रहता है, फिर भी मनुष्य बैठा रहता है सब सुख तथा दुःखों में आँखें ऊपर

किये हुए।'

ऊपर जो कविता दी गई वह पुरानी है, 'पद्मा पर उनकी बिल्कुल अभी की लिखी हुई एक कविता दी जाती है।

दूरदेशे तोरे बहुदिन छिनु भुले
पद्मा मोर।
आबार शाङने तोर कूले-कूले भाङन लेगेछे जोर ?
नेमेछे वर्षा घोर।
चरेर चिह्न धुये मुछे दिये
विपुल सलिल संभार निये
यौवन तोर बोये निये जास काहार दोर ?
के मनोचोर ?
पद्मा मोर।

'मेरी पद्मा दूर देश में तुझे बहुत दिनों तक भूलाकर था। फिर श्रावण आने से तेरे किनारे सब टूट रहे हैं, घोर वर्षा उतर आई। सूखी का चिन्ह धो-पोंछकर, विपुल सलिल संभार लेकर तेरे यौवन को बहाकर किसके दर पर ले जा रही है ? किसने तेरा मन चुराया, मेरी पद्मा।'

प्रकृति और मानव का संघर्ष इस कविता में अधिक स्पष्ट है—

सबुज मायाय भरेछे दुकूल तबो
पद्मा मोर।
जलेर किनारे एसेछे दुर्वा नव
तोबु दया नाही तोर ?
अतिथि शिशुरे हासिस कि करि ?
निठुर प्रहारे उठिछे शिहरी

ठिकरि पड़िछे क्षुरधार स्रोत निरन्तर
देखिते कोमल तबु एतो तोर
हिया कठोर ?

'हरी माया से तेरे दोनों किनारे भरे हैं मेरी पद्मा। पानी के किनारे नई दुर्वा आई है फिर भी तुझे दया नहीं है ? अतिथि और फिर बच्चे को इस प्रकार कहीं दुतकारा जाता है। तेरे निठुर प्रहारों से वह हर घड़ी सिहर उठती है, तेरे क्षुरधार स्रोत मानों निरन्तर चटक रहे हैं, देखने में तू इतना कोमल है फिर भी तेरा हृदय इतना कठोर है मेरी पद्मा ?'

कवि फिर पद्मासे पूछता है तेरे जीवन का दर्शनशास्त्र भला क्या है, दुःख के दहन में तू बारबार मनुष्य का नक़ली-असली देखना चाहती है। जीवन की धारा मन्थर हो आती है, सत्य दिन रोज़ के अभ्यास से याने रोज़ प्रयोग में आने के कारण लुप्त हो जाता है, वहीं तेरी लीला ध्वंस के उल्लास में है। मेरी पद्मा ध्वंस के साथ ही सृष्टि का तानाबाना है। तेरे किनारे के लोग हमेशा बद्दू (*nomad*) ही रह गये, दो दिन के लिये किनारे पर घर बाँधते हैं फिर दो दिन बाद कहाँ चले जाते हैं ?

पद्मा कविता में कवि ने नदी को उपलक्ष्यकर मनुष्य-विरुद्ध प्रकृति को ही दिखलाया है। प्रकृति और मनुष्य का जो संघर्ष सृष्टि की आदि से चला आया है उसीकी एक झलक इस कविता में है, वही प्रकृति एक समय कितनी सुन्दर और दूसरे समय कितनी निष्ठुर है यह इस कविता में दिखलाया गया है, किन्तु साथ ही मनुष्य किस प्रकार ज़िद्दी है, प्रकृति ने ज़रा ढील दी आगे बढ़ा, ज़रा तीव्र हो गई पीछे हट गया, यह बात पद्मा किनारे मनुष्य के *nomadic* होने से दिखलाया गया है।

आशु चट्टोपाध्याय

आशु चट्टोपाध्याय की 'यौवन-धर्मी' नामक कविता कविता

रूप में कुछ विशेष सफल न होने पर भी हम इस युग के कवियों की मनोवृत्ति का पता पाते हैं। वे कहते हैं—

आमरा यौवन-धर्मी-एई विंशो शतकेर तरुण तापस
बाँचार साधना कोरि—ठीकमतो बाँचा जाके बले—
रुटिनेर दास नई, बाँधा पथे कोभु पथ चलिबोना,
प्रथा के मानि ना मोरा, यदि सेई प्रथार पाँचिले,
मान्धातार आमलेर से प्रथार कठिन पाथरे
माथा खुँड़े मरे आत्मा असहाय, असह्य क्षुधाय

'हम यौवन-धर्मी हैं, हम इस बीसवीं सदी के तरुण तपस्वी हैं, जीने की साधना करते हैं याने ठीक तरह से जीना जिसे कहते हैं। हम रूटीन के दास नहीं हैं, लकीर के फ़क़ीर हम कभी नहीं हो सकते। प्रथा को हम कभी नहीं मानते, चाहे प्रथारूपी दीवार के मान्धाता के ज़माने के कठिन पत्थर में असहाय आत्मा चाहे असह्य भूख में सिर दे मारे।'

'हम यौवन-धर्मी हैं, कौन कहता है कि हम अपने ही हाथ के बनाये हुए कुछ लोहे के यन्त्रों के ग़ुलाम हैं ? हम यन्त्र के प्रभु हैं, हम समूची पृथिवी के मालिक हैं। अपनी ही इच्छा से हम सब कुछ तोड़ते तथा बनाते हैं। जीवन के सभी रास्तों में हमारी अश्रान्त यात्रा है; जाड़ा, गर्मी, वर्षा में हम मैदान के अट्टहास हैं।'

'हमें खाने को नहीं मिलता। हँसी आती है। हममें से कितने नहीं पाते। हम ईश्वर के समकक्ष हैं, हम भाग्य के नियामक हैं। हमने उत्सुक तगड़े हाथों में इस जीवन की पतवार पकड़ रक्खी है, हमें मालूम है हम कहाँ जा रहे हैं। हर समय हमारे पाल के लिये हवा रहती है, यदि कभी अन्यथा हो तो जानिये कि यह क्षणिक विलास है। हम अपने भाग्य को लेकर बीच-बीच में खेलते हैं।'

यदि मेरी कोई रात नारी के केश के गुच्छों में मंदिर मोह के

स्वप्न में क़ैदी हो तो फिर दिन में काम के आँगन में मुझे धर्माक्त हँसी की आड़ में पाओगे। यदि किसी दिन मुझे शाल वृक्ष का सिर मृदु वायु से हिलते देखो और मुझे नक्षत्र की टिमटिमाती धीमी रोशनी में चुप बैठे देखो, तो मुझे बुलाना मत, मैं उस समय विधाता के साथ बात करता हूँ।'

यह देखने की बात है कि इस कविता में देश की पराधीनता का कोई ज़िक्र नहीं है, यद्यपि यौवन धर्म आज यदि कोई है तो उसका सबसे पहिला कर्त्तव्य इसी ग्लानि के विरुद्ध संग्राम करना है। अति-आधुनिक कविता यहीं पर अति-आधुनिक नहीं हो पाती, क्या इसकी वजह डर है ? कवि लोगों को इस पर सोचना चाहिये।

महीउद्दीन

कवि महीउद्दीन आधुनिक की सबसे बड़ी विशेषता को 'बुभुक्षा' करके व्याख्या करते हैं। उनकी आँखों में रूप-दृष्टि-तृष्णा है और हृदय में तृप्तिहीन अनन्त बुभुक्षा है। उनकी समस्त इन्द्रियाँ रोकर दिन-रात कहती हैं कि वे भूखी हैं, भूखी। वे कहते हैं—

जड़ेर जड़ता त्यजि जीव आमि जन्म कबे लभिलाम भवे
अनन्त सृष्टिर माझे भूमानन्दे ज्योतिष्केर आलोक आहवे
इत्यादि

'जड़ की जड़ता त्यागकर मैं जीव इस दुनिया में पैदा हुआ। मैंने कहा मैं जड़ हूँ, जग गया हूँ, सीमाहीन शून्य को व्याप्तकर प्रतिध्वनि हुई जगा हूँ, जगा हूँ। निर्विकार निद्रा जगत में मैं न मालूम थका हुआ मुसाफ़िर कब से थककर सो रहा था और मैं अपनी उन्मत्त गति का नृत्यताल भूल गया था। +++मैंने इस विश्व की सराय में पुकारा भाई मैं वासना का भिखारी हूँ, रोशनी चाहता हूँ।" छाया चाहता हूँ, आनन्द से पुलकित महाप्राण चाहता हूँ।'

'जंगल काटकर मैंने सोने की नगरी बसाई। हिमालय की चोटी की ओर यात्रा की है, अगाध जलधि के बीर से मोती

निकाला है। धन और रत्न से विपुल भंडार भर लिया है। अपने ही परिश्रम से मैंने इस विशाल भोग के संसार की सृष्टि की है। ++सूर्य, चन्द्र, ग्रह नक्षत्रों के रहस्य की मैंने ही खोज की है, पाताल में राज्य फैलाया, काव्य, दर्शन, इतिहास, विज्ञान की सृष्टि की। मैंने वंचित मानव के लिये साम्य, मैत्री, स्वधीनता के गीत गाये हैं। मैंने भूख से व्याकुल निपीड़ित मानव के भूखे जठर में रोये हैं, मैंने निर्यातन निर्वासित के लिये फाँसी का फन्दा गले में डालकर गाये हैं।' इत्यादि

अरुणकुमार मित्र

तरुण कवि अरुणकुमार ने 'लाल पर्चा' शीर्षक एक कविता लिखी है—

प्राचीर पत्रे पड़ोनि इस्ताहार
लाल अक्षरे आगुनेर हलकाय
झलसाबे काल जानो ?

इत्यादि

'क्यों जी तुमने दीवार पर चिपका हुआ लाल-पर्चा नहीं पढ़ा, उसके लाल हरफ़ आग की तरह रंग लायेंगे। (आकाश में विरोध का उत्ताप घनीभूत होता है, पुरानी बातों की धार मुथरी हो गई है) युगान्त उत्कर्ण है, पढ़ो जी, ज़रा लाल पर्चे को तो पढ़ो।'

'भीड़ में भिड़कर खोजो तो सही फ़ौज तैयार है, हथियार से लैस। कड़ी मुठ्ठियों से ज़बर्दस्ती स्वर्ग छीन लेना है, क्या देवता भी इसे रोक सकते हैं।'

यह कविता बहुत लम्बी है, इसको हम यहीं समाप्त करते हैं।

फुटकर कवित्रों की कविता

आगे हम कवि को विशेष महत्त्व न देकर यह दिखायेंगे कैसे

कैसे विषय पर ताज़ी से ताज़ी बँगला कवितायें लिखी जा रही हैं।

अमूल्य चट्टोपाध्याय नामक एक कवि किस प्रकार की उपमा का व्यवहार कर रहे हैं। देखिये, शायद बँगला के पुराने कवि जब अमूल्य बाबू मरकर वहाँ जायँ तो उनके साथ रहने को इनकार करें।

मध्यरात्रे मिडल रोडे नैशब्द्य झुलछे
गरुर मांसेर मतो।
निःशब्द, निःशब्द रात्रि घन मेघे।

पहिले तो बड़ी देर तक कविता मेरी समझ में नहीं आई, फिर मैंने सोचा इसका अंग्रेज़ी में अनुवाद करूँ तो समझ में शायद आवे क्योंकि मैं जानता था आजकल के बहुत से कवि अंग्रेज़ी में सोचते हैं। अंग्रेज़ी में अनुवाद करते ही कविता मेरी समझ में आई। वह अनुवाद यों था—

At the dead of night silence hangs in middle road
Like a piece of beef
Silent, silent is the night with thick clouds

अंग्रेज़ी में इसलिये समझ में आया कि *silence hangs* में *hang* शब्द हम समझ जाते हैं, किन्तु निःशब्दता झूल रही है यह उतना समझ में नहीं आता। यहाँ गोमांस के साथ तुलना देकर कवि ने रात्रि की निस्तब्धता की वीभत्सता दिखलाई, इसलिये इस कविता की वाक्यरचनाशैली अंग्रेज़ी की (*Anglicised*) होते हुए भी इसकी आत्मा भारतीय है क्योंकि गोमांस का बड़ा टुकड़ा एक अंग्रेज़ की आँखों में वीभत्स नहीं, बल्कि उसकी जीभ से शायद लार ही टपक पड़े।

संजय भट्टाचार्य 'उह्य' नामक कविता में धर्म को भी पूँजी-पतियों का साथी बतलाते हैं।

तोमादेर तलोयार

झलमल करियाछे पृथिवीर रोदे;
झलमल करियाछे
तोमादेर मिनारेर चूड़ा।
तादेर अनेक घाम
अनेक चोखेर जल
वहु रक्त
शुकायेछे पृथिवीर रोद,
तोमादर इतिहासे
कोनो स्मृति आसे नाइ तार
शुधु एसे गेछे बार बार
मिनारेर चूड़ा आर
झलमल बाँका तलोयार।

"तुम्हारी तलवारों में तथा तुम्हारे मन्दिरों की चूड़ाओं में पृथिवी की धूप से चार चाँद लगे हैं; किन्तु उनका पसीना, आँसू तथा ख़ून को इस पृथिवी की धूप ने सुखाये ही हैं। तुम्हारे इतिहासों में इनके इन बातों का कुछ पता नहीं है, केवल बार-बार तुम्हारे मीनारों की चूड़ा और चमकती हुई बाँकी तलवारों का ही बार-बार उनमें आना-जाना हुआ है। स्वर्ग में जो देवता आये वे भी बड़े कीमती थे, वे यदि कभी कृपाकर इस पृथिवी पर तशरीफ़ लाते हैं तो तुम लोगों की स्वार्थसिद्धि के लिये। उनकी भूख की तड़प, अपमृत्यु, तथा मिट्टी की देह देवताओं के मन्त्र से और म्लान हो जाती है, तुम्हारे मन्दिरों की डेवढ़ी में उनका कोई चिह्न तक नहीं है, उनके लिये तो तुम्हारे देवता केवल मिट्टी भर हैं।"

आधुनिक मन की प्रतिक्रिया *escapism, back to the Jungle* या *rebarbariousness* में हुआ है।

सन्तोषकुमार घोष कहते हैं—

तार चेये चलो कोनो खर्जुर-कुंजे
जे था ओड़े शुधु सादा बालि धू धू प्रान्ते
सार्थवाहीरा उष्ट्रेर पिठे चलेछे
पाये आँका पथ दूर दिगन्ते पालालो ?

'चलो इससे कहीं खजूरों के कुंज में चलें, जहाँ केवल सफेद बालू वीरानों में उड़ता है, कारवाँ चले जा रहे हैं; पदचिह्न से अंकित पथ जहाँ निरन्तर क्षितिज में मिल जाता है।"

उँकि देबेनाको से खाने कखनो दैनिक
युद्धे कलाख चीना सैनिक मरेछे
सांहाइ-एते सांघातिक की घटलो
मालती, से सब जेने आमादेर लाभ कि ?

"वहाँ पर दैनिक अखबार झाँक भी नहीं सकते। वहाँ यह नहीं सुनना पड़ेगा कि कितने लाख चीनी सैनिक मरे हैं, सांघाई में सांघातिक क्या-क्या घटना हो रही है मालती, यह सब जानकर मुझे फ़ायदा क्या है ?"

शहरेर पथे कोथाय मिछिल चलेछे
धर्मघटिरा कोथाय गुलि खेये मरलो
ना हय हलोई आश्रयहीन इहूदी
आमादेर नीड़ थाकलेइ हलो अटूट

'शहर में कहाँ मज़दूरों का जुलूस निकला, कहाँ हड़तालियों पर गोली चली इनसे मेरा क्या वास्ता ? सारी दुनिया के यहूदी चाहे आश्रयहीन हो जायँ, हमारा खोता बना रहे तो बस।'

'वहाँ पथ चलते-चलते उन्मन बेकार युवक धनियों की मोटरों

के नीचे छुट्टी नहीं पाते, फिर हे मालती कारखानों की चिमनी के धुएँ से तुम्हारी चाँदनी मैली नहीं होगी।'

'बनियों और धनियों की लोभाग्नि, अन्याय तथा बारूद से हवा भर गई है, उधर जापान......है, न मालूम कब क्या गुल खिलावे। चलो इससे खजूरों के कुंज में चलो, जापान की साधु चेष्टा सार्थक होने दो। हम एक दूसरे को लेकर सुखी होंगे, भागे हुए के प्राण में बारूद भला क्या असर करेगा।'

सच बात कही जाय तो यह प्रतिक्रिया है। आधुनिक के जीवन में जो सैकड़ों समस्यायें है उनसे घबड़ाकर पलायनवाद (*escapism*) का आश्रय लेना या बीते हुए स्वर्णयुग को लौटा लाने का स्वप्न देखना (*revivalism*) कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अन्याय है किन्तु वह ज़बर्दस्त है, उससे लड़ना मुश्किल है, लड़ने पर खतरे हैं, जेल काला-पानी, फाँसी। ऐसी हालत में इन काल्पनिक तथा बेखबर मतवादों के बालू में शुतुरमुर्ग की तरह मुँह छिपाकर बैठना आश्चर्यजनक नहीं। आज मध्यम श्रेणी अच्छे से अच्छे बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार की अकर्मण्यता में अपना जीवन खो रहे हैं। इसीको कहते हैं *La Grande Trahision* याने विराट विश्वासघात, पढ़ेलिखे लोग सब कुछ समझकर भी खतरे के कारण काम से जी चुराते हैं यही विराट विश्वास-घात का स्वरूप है।

सुभाषचन्द्र मुखोपाध्याय की एक कविता और देखिये। इसमें ज़मींदार के फटे हाल का वर्णन है। कैसे वह एक तरफ किसान तथा दूसरी ओर पूँजीवाद की चक्की के दो पाट के बीच पिसकर खतम होते जा रहे हैं उसको दिखलाया है।

कविता का नाम है 'अतःपर'। इस कविता में छन्द का कहीं पता नहीं, हाँ, सीढ़ी की तरह लिखी गई है। कविता यों है

"सम्पादक को मिले

महाशय—इधर-उधर मेरी कुछ ज़मींदारी है, लेकिन इस बुरे समय में उसे बचाना कठिन है। वंशपरम्परा के अनुसार किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर जैसा ईश्वर चलाते हैं वैसा ही चलता हूँ। बरक-न्दाज़ तावेदार हैं, लगान वसूल करने की सब तरकीबें उन्हें याद हैं, फिर भी तीन साल से लगान वसूल कम हुआ। अदालत में जाओ कुछ होता नहीं। थोड़ी आय है सो भी रेहन के .फसाद में है। पता नहीं अन्त में भीख माँगना बदा है या......। बेटा कलकत्ते में विद्या सीखते हैं, बोतल से उनका प्रेम है, यह पैतृक है...। विपत्ति एक ही नहीं, कुछ सच्चरित्र किन्तु बुद्धिहीन नौजवान निरक्षर किसानों को लेक्चर से मुग्ध करते हैं, इधर हम लोगों को काटो तो .खून नहीं। क्या ये ही साम्यवादी हैं ? फिर भी शायद अदृष्ट का चक्का घूम जाय। अंग्रेज़ प्रभुओं का हाल बुरा है, हमारे हाथ में राज्यभार आयेगा, कोई ताज्जुब नहीं। पूँजीपतियों का पौबारह है। विशेषकर भारतवर्ष के इकलौते नेता हैं गान्धी, जितना रुपया लगता है सब पूँजीपति देते हैं। क्यों न दें, सोचते हैं इसका भविष्य नतीजा अच्छा होगा। महाशय ज़मीं-दारी जाय तो जाय। बनिये की मौलिक प्रतिभा देशी शिल्प में मुक्ति पायेगी। इस विषय में पत्रपाठ मुक्ति चाहता हूँ।

निवेदक बंगचन्द्र पाल ढाका"

मुझे डर है बहुत से लोग इसे कविता मानने को तैयार न होंगे, किन्तु जो कुछ भी हो यह भी एक धारा है।

रूस वर्त्तमान् समय में एक बहुत ही बड़ा वादविवाद का विषय है, रूस बहुतों के लिये एक *bogey* सा है, उसी पर श्रीसुरेन्द्रनाथ गोस्वामी ने एक कविता लिखी है—

लाल जुजु एलो ऐ, हुशियार
दुनियार खोकाखुकु चे चामिचि कोरोनाको
चोख कान वुजे सब बुप करे शुये थाको

हुशियार

इत्यादि

"वह देखो लाल भूत (*bogey*) आ रहा है, हुशियार ? दुनिया के बच्चों चिल्लाओ मत, आँख-कान बन्दकर चुपकर सो रहो, हुशियार। हिटलर, मुसोलिनी, जापानो नोगुचि सब कहते हैं हुशियार। अंग्रेज, फ्रांसीसी सावधान होकर घूरते हैं, बच्चों को पकड़ने का झोला लेकर वह आया लाल भूत। हुशियार, बच्चों सो जाओ, देर न करो, देखो वह विपत्तिसूचक लालबत्ती। हुशियार। सफेद, काले, पीले सब बच्चे पड़कर सो रहो। यहूदी भगाना है, ईसामसी भी आये हो गये, स्वस्तिकध्वजाधारी शान्ति-सेना पुकार रही है वह आया लाल भूत हुशियार।"

इस प्रकार अब आधुनिक कविता केवल नारी की पूजा में या देवताओं की प्रशंसा में सीमाबद्ध न रहकर मनुष्य के सभी क्षेत्रों में सभी दिलचस्पियों में अपने लिये रास्ता बना रही है। शायद इस कारण आलंकारिकों की दृष्टि में अब वह उतनी हद तक कविता नहीं रही, किन्तु अब वह जीवन के हरेक रन्ध्र में अपनी जड़ को प्रविष्ट कराकर अपने को सजीव बनाना चाहती है, साथ ही जीवन की मिट्टी को वह अधिक सामंजस्यपूर्ण तथा उसको एक दूसरे से सम्बन्धयुक्त बनाना चाहती है। यही इस युग की कविता की विशेषता है। हाँ कहीं-कहीं इसमें अति हो रही है यह मानता हूँ, किन्तु कोई भी बाढ़ जब आती है तो सब बह जाती है, जब बाढ़ का पानी चला जाता है तो वह एक मिट्टी छोड़ जाती है, उसीमें सोना फलता है। अभी बँगला के काव्यक्षेत्र में बाढ़पर बाढ़ आ रही है हम उस महान् प्रतीभा की प्रतिक्षा में हैं जो पानी को हटाकर इसमें सोना पैदा कर सके।

इति